पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में

किसान और खेतिहर मजदूर : तुलनात्मक अध्ययन

बीसवीं सदी के अंतिम दौर में जो भूमंडलीय स्थितियाँ उत्त्पन्न हुईं, उन्होंने उपन्यास साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। यही प्रभाव इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों का केंद्र बिंदु भी बनी। इक्कीसवीं सदी के बदलते परिवेश के कारण मनुष्य की जीवन शैली, रिश्ते-नातों में उनकी मूल्य दृष्टि आदि में कई सारे बदलाव हुए। भूमंडलीकरण और नवपूंजीवाद ने सम्पूर्ण विश्व को एक बाज़ार में परिवर्तित करने का काम किया है। आज मनुष्य रिश्ते नातों, प्रेम संबंधों को सिर्फ उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देख रहा है। उसके लिए धन ही सर्वप्रथम है। जिस तरह से देश में औद्योगीकरण हो रहा है, बड़ी-बड़ी कंपनियों की स्थापना की जा रही है, इनका समाज के बदलाव में भरपूर योगदान है। इसी औद्योगिक और पूँजीवाद के प्रभाव ने समाज में असमानता को बढ़ावा दिया है, पूँजीपति वर्ग पहले की अपेक्षा और भी मज़बूत हो गया है तथा अन्य वर्ग आर्थिक रूप से और भी पिछड़ गए हैं। इन सबके परिणामस्वरूप समाज में हिंसा, साम्प्रदायिकता, अलगाव आदि को पनपने के लिए जगह मिली है क्योंकि निर्धन वर्ग अपने आप को समाज में अपेक्षित सा महसूस करने लगा है। जिस तरह के समाज का निर्माण हो रहा है उसमें हमारा कृषक और खेतिहर मजदूर समाज कहीं भी फिट नहीं बैठ रहा है, न ही इस वर्ग पर कोई ध्यान ही दिया जा रहा है। यदि सच में परिस्थितियां इस वर्ग के अनुकूल होती तो आज कृषक समाज की स्थिति दिन-प्रतिदिन और भी ख़राब नहीं होती। अंग्रेजी राज़ से लेकर अब तक ऐसी कई घटनाएँ देखने को मिलती हैं। जहाँ देश में अन्न का भंडार तो भरा रहता है लेकिन किसान और खेतिहर मजदूर भूखों मर रहे होते हैं।

कृषि प्रधान देश के किसान आखिर किन समस्याओं के सामने दम तोड़ देता है ? वह आत्महत्या का रास्ता अपना लेते हैं।

इक्कीसवीं सदी में उद्योग धंधे आदि विकसित होने के बावजूद किसान बेरोज़गारी एवं भुखमरी से परेशान हैं। इक्कीसवीं सदी समाज को तो नयी दिशा दी किंतु किसान एवं खेतिहर मजदूर अपनी दयनीय अवस्था में ही है। उनकी परिस्थिति में बदलाव नहीं हुआ। साहित्य की अनेक विधाओं में किसान एवं खेतिहर मजदूरों पर पूँजीवाद के प्रभाव को दिखाया गया है। पूंजीवादी व्यवस्था की खामियों को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पहचान कर अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर उनका उल्लेख किया है। रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं' में भारतेंदु जी के एक लेख की चर्चा करते हुए कहते हैं- "भारत के कल-कारखाने, किसान, मजदूर, कारीगर सब बर्बाद हो रहे थे। अत: कपड़ा बनाने वाले, सूत कातने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं। इस रोग का कारण अंग्रेजी राज़ है। इस अंग्रेजी राज़ में क्या कारण है कि दिन-दिन महंगाई बढ़ती जा रही है, जो अन्न गत वर्ष में 12 सेर का बिकता था जो इस वर्ष 8 सेर का बिकने लगा।"[1]

इक्कीसवीं सदी की परिस्थितियों और समाज में किसानों और खेतिहर मजदूरों के लिए कोई जगह नहीं है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें किसान और खेतिहर मजदूर की जो समस्याएं देखने को मिलती हैं वो इक्कीसवीं सदी में आये बदलाव का ही प्रभाव है। कृषि एवं पशुपालन जिसकी शुरुआत लगभग 6500 ई.पू.में हुआ था। नवपाषाण युग में खेती का आविष्कार स्त्रियों द्वारा माना जाता है। जब पुरुष शिकार करता था और स्त्रियाँ खाने के लिए जंगलों से अन्न एकत्रित करती थीं। ऐसे ही अन्न को एकत्रित करते समय उन्होंने देखा कि अन्न के दाने से एक पौधा भी तैयार हो सकता है। तभी से उन्होंने ज़मीन में अनाज को गाड़ना शुरू किया। इस तरह से खेती करने की एक परंपरा का विकास हुआ या यूँ कहें कि कृषक समाज का ज़न्म हुआ। रामशरण शर्मा के अनुसार- "खेती के आविष्कार को मनुष्य के इतिहास में प्रथम औद्योगिक क्रांति कहा गया है।"[2]

भारत में कृषि व्यवस्था हजारो सालों से चली आ रही है। किसान की स्थिति जिस तरह से शुरूआती दौर में थी आज भी वैसे ही है सिर्फ तरीका बदल गया है। सामंती व्यवस्था से अब तक किसान सिर्फ शोषित ही होता आया है। सामंती शासन में भी कृषक पूर्णत: सामंतों के अधीन रहते थे इसलिए वे उनका भरपूर शोषण करते थे। इसमें किसान भूमि शुल्क के साथ-साथ अपनी उपज1/4 भाग राजा को दे देते थे। इरफान हबीब के अनुसार- ‘‘कौटिल्य ने इस बात पर बल दिया कि राजकीय भूमि पर बनी बस्तियों में वास करने वालों में अधिकतर संख्या कृषकों और अन्य निम्नतर वर्गों की अधिकता होनी चाहिए क्योंकि उनके शोषण की सम्भावना अधिक होती है।’’[3]

परिस्थितियों के बदलते-बदलते सामंती समाज में ही कृषक वर्ग और खेतिहर मजदूर का विभाजन हो गया। किसान अपने आपको समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति के तौर पर देखने लगे थे, इसलिए उनका भूमिहीनों पर अमानवीय अत्याचार शुरु हो गया। पहली बात कि खेतिहर मजदूर के पास भूमि नहीं थी दूसरी वे समाज के सबसे निम्न वर्ग के लोग थे इसलिए इनका दोहरा शोषण होने लगा। इरफान हबीब के अनुसार- ‘‘गाँव से बहिष्कृत और जोतों से वंचित, अछूत कभी भी किसान नहीं बन सके, इस तरह वे विहित सेवक का काम करने के लिए मजबूर थे। इससे वे कम काम के समय में अपना गुज़ारा करते थे ताकि खेतों में ज़रुरत पड़ने पर वे उपलब्ध हो सकें। किसान जो खुद ही बुरी तरह शोषित था, शारीरिक श्रम करने वाले सेवकों के कठोरतम शोषण में शामिल हो जाते थे। यह निश्चय ही भारतीय सामाजिक इतिहास की घटक त्रासदियों में से एक था।’’[4]

इस तरह किसान और खेतिहर मजदूर वर्ग का उदय समाज में प्राचीन काल से ही हो गया था। समय के साथ-साथ इनकी परिस्थितियां बदलती रहीं किंतु इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के आगमन से किसानों की परिस्थितियों में काफी बदलाव आया। औद्योगीकरण, पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने किसान और खेतिहर मजदूरों को समाज में वंचितों की श्रेणियों में लाकर खड़ा कर दिया है। पूंजीवादी तरीके से कृषि करने से कृषि के ढांचे में कई परिवर्तन हुए हैं। पूंजीवादी कृषि बड़े किसानों के

लिए लाभदायक सिद्ध हुई, किंतु छोटे किसान, सीमांत किसान भूमिहीनता की तरफ बढ़ रहे हैं। पूंजीवादी कृषि की परिभाषा अशोक रूद्र ने इस प्रकार दी है- "किसान अगर किसी और को स्वामित्व न देकर ज़मीन को अपने अधीन रखता है, अगर अपने परिवार के श्रम के अनुपात में भाड़े के मजदूरों के श्रम का अधिक उपयोग करता है, अगर खेती के काम में मशीनों का उपयोग बढ़ता है, अगर उत्पादन का बड़ा भाग बाज़ार में जाता है, अगर उत्पादन में विनियोग मूलतः बाज़ार के लाभ के द्वारा परिचालित होता है तो यह मानना पड़ेगा कि खेती पूँजीवादी तरीके से हो रही है।"[5]

कृषि के इस तरीके के कारण हमारे समाज में छोटे एवं सीमांत किसानों के हाथों से उनकी ज़मीन धीरे-धीरे छिनती जा रही है और वह भूमिहीन होता जा रहा है। इसलिए समाज में खेतिहर मजदूरों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। कृषि समाज में किसान और खेतिहर मजदूर वैसे तो एक दूसरे के पूरक हैं किंतु इनकी परिस्थितियां भिन्न होती हैं। किसान एवं खेतिहर मजदूरों की तुलना हम निम्न समस्याओं के आधार पर कर सकते हैं-

5.1 व्यवस्था और तंत्र

किसान और खेतिहर मजदूर की बात जहाँ आती है। वहां अनायास ही भ्रष्टाचार का प्रश्न उठता है। किसान और खेतिहर मजदूर की दयनीय स्थिति के लिए भ्रष्टाचार प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। समाज में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को बहला-फुसलाकर उनका शोषण करने के लिए कई शक्तियां उत्तरदायी हैं। सर्वप्रथम तो हमारे समाज में किसान जिनके सामने पहले से ही कई समस्याएं हैं उनको और बढ़ाने के लिए हमारा सरकारी तंत्र ही उत्तरदायी है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में कासीनाथ जो इलाके का राजनेता है। वह किसानों और खेतिहर मजदूरों को रोज़गार देने का लालच देकर उनकी ज़मीनों को हड़पना चाहता है। उपन्यास में भूमंडलीकरण का दुष्प्रभाव दिखाया गया है कि अंधाधुंध विकास के दौर में किसी को भी किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की कोई परवाह नहीं है। वे सिर्फ उनका दोहन ही करना चाहते हैं। कासीनाथ सीमेंट की फैक्ट्री लगाना चाहता है, जिसके लिए वह किसानों की जमीनों को हड़पना

चाहता है। किसान किसी भी कीमत पर अपनी ज़मीन नहीं देना चाहते हैं। काशीनाथ कहता है- "ये उदास गाँव वाले मूरख हैं। तरक्की वकास के दुश्मन ठहरे। आगे बढ़ना ई नई चाहते। गरचे इधर समींट की ऊ फैक्टरी खुल जाने दी होती तो आर-पार की ये सारी रिढ़ियां ढ़लाने तमाम खरा पैसा मिलके बिक-बका ली होतीं। ऐसे ई इनमें क्या धरा है ? सीमेंट वाले साह ने इनका सारा पत्थर निकाल के इनको एकदम समतल मैदान न बना देना था। उस समतल में उसने फेर इंजीनिरिंग कौलेज खोल देना था। काशीनाथ कहता है इससे चार रोज़गार खुलते बिलबौंदे इन लौंडों लपाड़ों को कुछ कामधाम मिलता ...कहीं नौकरी धौकरी देखते।"[6]

जिनके पास जमीन है वे किसान अपनी ज़मीन को बचाने के लिए किसी भी हद तक विरोध करने को तैयार हैं। उन्हें खेती में दुःख उठाना मंजूर है किंतु अपनी ज़मीनें देना नहीं मंजूर है। दूसरी तरफ खेतिहर मजदूर जो पहले से ही भूमिहीन हैं, उन्हें तो सिर्फ अपने दिन की दिहाड़ी से मतलब है। जिन फैक्ट्रियों को खोलने के लिए किसानों की ज़मीनें हड़पी जाती हैं और उन्हें मजदूरी का लालच दिया जाता है। उन्हीं कम्पनियों में जब खेतिहर मजदूर काम करने जाता है तो उसे तरह-तरह की यातनायें मिलती हैं। सर्वप्रथम उन्हें मजदूरी कम मिलती है। दूसरी बात सरकार और पूंजीपति जब चाहे उसे बंद कर देते हैं और मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं। डूमणू ने संतू से कहा-"पर इधर सुना था कि म्हारी फैक्टरी काम बंद करने वाली है,'। प्लास्टिक के लफाफों को सरकार ने बंद कर दिया है।.....सरकार का डमाक ख़राब है, संतू ने जरा सा कराहकर पहलू बदलते हुए कहा।.....पैसा आनो बंद हो गया तो टब्बर कैसे पलेगा भाऊआ।"[7]

मजदूर अपना परिवार पालने के लिए अपने श्रम का ही सहारा लेता है, किंतु किसान अपनी ज़मीन पर परिश्रम करके अपना पेट पाल सकते हैं। पूंजीवाद के दौर में मजदूरों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी है। समाज के हर वर्ग की दशा में परिवर्तन हो रहा है किंतु एक श्रमिक का जीवन विकास के हर दौर में एक जैसा रहा है। अजय तिवारी के शब्दों में- "औद्योगिक पूंजीवाद के आरंभिक दिनों में श्रमिकों की दशा इतनी सोचनीय न रही होगी जितनी वृद्ध पूंजीवाद के दिनों में है। तब अधिकारहीन श्रमिक के सामने

अधिकार अर्जित करने का संघर्ष था। उसमें वह कुर्बानियों के साथ-साथ विजय पाता जा रहा था। इस तरह अपनी नारकीय परिस्थितियों से बाहर निकलता जा रहा था। इसलिए एक नयी श्रमिक वर्गीय चेतना भी अर्जित कर रहा था। तभी यह नारा उभरा था-दुनिया के मजदूरों, एक हो ! आज मजदूर की दशा इतनी नारकीय नहीं है, लेकिन वह अब तक अर्जित अधिकारों को गंवा रहा है, पूंजीवाद के मायाजाल में उसकी चेतना इतनी गिर गयी है कि वह अपने शत्रु मित्र नहीं पहचानता, संघर्ष द्वारा अपने अधिकार पाने की इच्छा भी नहीं रखता।"[8]

किसान और खेतिहर मजदूर दोनों ही सरकार और बाज़ार के भ्रष्टाचार को समझ नहीं पाते हैं। और उनके शोषण का शिकार बनते रहते हैं। 'राजू शर्मा' का उपन्यास 'हलफनामे' तो पूर्णतः सरकारी तंत्र की भ्रष्टता को उजागर करता है। किसान शासन के मकड़ जाल में फंसता ही चला जाता है। स्वामीराम जो एक मध्यम किसान है। सूखे की समस्या के कारण क़र्ज़ के जाल में फंसता चला जाता है। स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है। स्वामीराम का पुत्र मकई जो खेती-किसानी से पूर्णतः दूर ही रहना चाहता है। न चाहते हुये भी वह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात मुआवजे की राशि प्राप्त करने के लिए मकई हलफनामे दाखिल करता है। उसे संख्या में इतने हलफनामे दाखिल करने पड़ते हैं कि वह हलफनामों का ज्ञाता बन जाता है- "सहज, अनपढ़ तरीके से मकई ने गुन लिया था कि हलफनामों की रीति उस जैसे के लिए गले में फंदा डालने जैसा है। जिस तरह पशु बिना चखे महज सूंघकर वस्तु का हित-अहित भाप लेता है। कालान्तर में जब वह इस विद्या में पारंगत हुआ, उसने सरकार तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्नीस हलफनामों का पुल बनाया, जबकि उसके नीचे बंजर ज़मीन थी और पुल की दरकार नहीं थी, और आखिर में मुख्यमंत्री तक पहुँचा भी, उसने जाना कि हलफनामों का यह प्रचंड घोषणा तत्व दिलासा ने इजाद नहीं किया था....देश में जितने हलफनामे बनते हैं सब एक जैसे होते हैं और उनकी समान भाषा के पीछे सत्ता की ताकत और एकतरफापन है। मकई का भोला संदेह सही था कि यह कागज़ कमजोर इंसान का बैरी है और सत्ता का एक साथ बैसाखी और औजार.....एक साल

बाद मकई हलफनामे की महिमा पर घंटों बोल सकता था।"[9] हमारे देश में भ्रष्टाचार की श्रेणी में कानूनी, गैरकानूनी बाज़ार आदि सभी शामिल हैं। कई बार ऐसा होता है कि किसानों को सरकारी पद पर बैठे लोगों का भ्रष्टाचार तो समझ में आ जाता है, किंतु बाज़ार और दलालों के भ्रष्टाचार को वे अच्छी तरह से समझ नहीं पाते हैं। समाज के दलाल कई कामों को किसानों के समक्ष इस तरह से पेश करता है कि वे उसमें फंस जाते हैं। सवेरा गाँव में लाला जिसका बोरवेल का व्यापार है। सवेरा गाँव को डार्क एरिया घोषित किया गया है। फिर भी लाला वहां के लोगों को बहला फुसलाकर अपना व्यापार जमा रहा है और किसान उसके जाल में फंसते जा रहे हैं- "एक सरकारी नूमाइन्दा खबर लाया कि सरकार ने इस इलाके को 'डार्क एरिया' घोषित कर दिया है। डार्क एरिया मतलब ! मतलब अँधा इलाका पानी से मरहूम, बोरिंग डालना अपराध है। पर सरकारी महकमे में लाला की अच्छी मिली भगत थी। उसकी छत्रछाया में खोदाखादी का काम चलाता रहा। बोरिंग के धंधे में उसका सर्वाधिकार था। दक्षिण भारत से सैकड़ों ट्रक पाइप लेकर पहुँच रहे थे। देखते ही देखते लाला मालामाल हो गया था और छोटे किसान तमाम क़र्ज़ में डूब गए। फसल का कोई ठिकाना नहीं था, एक पैदावार अच्छी हुई तो दूसरी बिगड़ गयी ।"[10]

भारत में भ्रष्टाचार फैलने का एक कारण यह भी है कि हमारे देश में बड़े-बड़े घोटालों पर मीडिया में खूब शोर-शराबा होता है किंतु निचले स्तर पर फैले भ्रष्टाचार और आमजन की समस्याओं पर मीडिया में बहुत कम ही चर्चे सुनाई देते हैं। इसलिए किसान और खेतिहर मजदूरों की समस्याएं दब कर रह जाती हैं। अनिल चमडिया के शब्दों में- "भारतीय मीडिया के क्रमिक विकास में देखा गया है कि किसानों और मजदूरों के लिए सूचनाएँ तो उसके ज़रिये पहुँचाने के प्रयास होते हैं, लेकिन किसान व मजदूरों की खबर के लिए भारतीय मीडिया में जगह कम होती चली गयी है। यह कमी इस हद तक है कि उनकी खबरों को नज़रअंदाज़ किया जाता है और भारतीय मीडिया उनकी सांगठनिक एकता के खिलाफ विचारधारात्मक स्तर पर दिखने लगता है।"[11]

भ्रष्टाचार का सर्वाधिक खामियाजा किसानों एवं मजदूरों को भुगतना पड़ता है। स्वामीराम तो सिर्फ सूखे की समस्या से निजात पाना चाहता था लेकिन उसे सूखे से तो निजात नहीं मिली ज़िन्दगी से मिल गयी। उसका बेटा मकई जो कि शासन तंत्र के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया है। वह कोर्ट में बैठकर सोच रहा है- "बापू की आकृति सजीव-सी आँखों के आगे घूम गई। जाने के बाद वे सपनों में भी नहीं आये थे। मकई की आँखें छलछला गई-सामने की तहसील जनता और हाकिम, सरकारी कामकाज की अनवरत घिसघिस आंसुओं की डबडबाहट में तैरती, मिट्टी, अव्यक्त सी जान पड़ी.....क्या बापू भी कभी तहसील आए थे ? इस बेंच पर बैठे थे ? इस अबूझ तंत्र के सामने झोली फैलाई थी ? यह कैसी परीक्षा है ....आक्रोश का वह क्षण जिसे अपने में ही दम तोड़ना है।"[12] राजू शर्मा का 'हलफनामे' उपन्यास शासन के भ्रष्टाचार का जीता-जागता उदाहरण है। मकई जैसे साधारण इंसान उसमें फंसकर रह जाते हैं। पिता की आत्महत्या ने मकई के जीवन को परिवर्तित कर दिया। वह सिर्फ अपने पिता के लिए कोर्ट के चक्कर लगाता रहता है। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में- "राजू शर्मा ने 'हलफनामे' उपन्यास में प्रशासनिक तंत्र के भीतर पोर-पोर तक समा गए भ्रष्टाचार का प्रत्यक्षदर्शी चित्रण किया गया है। गाँव को केंद्र में रख 'हलफनामे' में गाँव, कस्बे, तहसील और जिला स्तर पर कोर्ट-कचहरी, अदालत में फैले भ्रष्टाचार को नंगा किया गया है। कथानक में आई स्थितियाँ इतनी-इतनी जानी-पहचानी और सामान्यजन की ज़िन्दगी की कड़वी सच्चाइयां हैं कि पाठक को लगता है वह इन ज्यादतियों का सहभोक्ता है। रिश्वत, चाहे वह किसी भी रूप में कितनी ही बड़ी या छोटी हो, के बिना आज कोई व्यक्ति अपना कोई भी काम नहीं कर सकता।"[13]

भ्रष्टाचार ने ही हमारे देश में लोकतंत्र को जीवित रखने का कार्य किया है। क्योंकि ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ लोकतंत्र हो और भ्रष्टाचार न हो किसान को हर काम के लिए रिश्वत का ही सहारा लेना पड़ता है। यहाँ तक कि मकई को अपने पिताजी के मृतक शरीर का पोस्टमार्टम करवाने के लिए भी डॉक्टर को रिश्वत खिलानी पड़ती है, क्योंकि डॉक्टर की मुट्ठी गरम किए वगैर वह मकई को स्वामीराम का मृत्यु प्रमाण-पत्र ही नहीं देना चाहता है। समाज का इससे घिनौना और कौन सा रूप हो सकता है जहाँ पर पुत्र

अपने पिता के मृतक शरीर के लिए खड़ा हो और उससे रिश्वत माँगा जा रहा हो। ऐसी स्थिति में किसी पुत्र की मन:स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है- “डॉक्टर कागज़ पर झुका और खुद के जितनी पतली कलम से उस पर मौत की तारीख दर्ज कर दी, मानो यमराज जीवन-मरण का हिसाब रख रहा है। उसके बाद कागज़ दोनों हाथों को मिलते हुए जैसे मकई को दान कर दिया। दिलासा की हिदायत के अनुसार मकई ने सावधानी से गिने नोटों की एक गड्डी अपनी मुट्ठी में बंद कर रही थी। उसने मानो एक प्राचीन रीति को निभाते हुए वह गड्डी प्रसाद स्वरुप डॉक्टर की खुली हथेली में छोड़ दी।”[14]

कोर्ट कचहरी के कोई भी काम हो जैसे ज़मीन की खसरा खतौनी, नकल, ज़न्म-मृत्यु प्रमाणपत्र, जाति-प्रमाणपत्र, हलफनामे, भूमि का बंटवारा और भी ऐसे कई काम होते हैं जो कोर्ट में रिश्वत दिए बगैर नहीं होता है। घूसखोरी का धंधा समाज में इतने व्यापक रूप में फ़ैल गया है कि सरकारी पद पर बैठा कर्मचारी अपने मूल काम को छोड़कर घूसखोरी के धंधे में ही लगा रहता है । पुष्पपाल सिंह ने पूंजीवाद के दौर में जिस तरह से भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ रहा है उसे इन शब्दों में व्यक्त किया है- “अथाह पूँजी के अबाध आवागमन ने विश्व अपराध जगत से भी अधिक भयानक एक और समस्या ने जकड़ रखा है, वह है भ्रष्टाचार। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में या कहें जीवन का कोई क्षेत्र नहीं बचा है जो भ्रष्टाचार से ग्रस्त न हो। विकसित देशों और विकासशील देशों, यहाँ तक कि अविकसित देशों में भी भ्रष्टाचार के दानव ने अपने दैने पूरी तरह फैलाये हुए है।”[15]

देश की आम जनता जब अदालतों में जाती है, तो उसे वहां का अलग ही स्वरुप देखने को मिलता है, जिनसे वह अभी तक बेखबर ही था। हद तो उस जगह पर होती है जब वकील और न्यायाधीश के बगल में बैठकर बाबू गरीबों से पैसे ऐंठता रहता है। अदालतों में गरीबों के मुक़दमे सालों-साल चलते रहते हैं उनकी कोई सुनवाई नहीं होती है। उनकी समस्याएं फाइलों में ही दब कर रह जाती हैं। यही हाल मकई के साथ भी होता है। वह कोर्ट में बैठकर अंदाज़ा लगा रहा है कि आखिर क्या कारण है कि उसके इतनी बार हलफनामे दाखिल करने के बाद भी उन पर कोई सुनवाई नहीं हो रही है- “अब उन्हें दसवां और

ग्यारहवां हलफनामा चाहिए ...एक, दो, तीन...आठ, नौ से इनका पेट नहीं भरा, इन्हें और खुराक चाहिए, राक्षस की तरह रोज़ एक आदमी का मांस... इतनी शपथ और सत्यनिष्ठा इतना सर्वोत्तम ज्ञान में एक के बाद एक डकार जाते हैं, इनकी भूख नहीं मिटती, इन्हें अपच नहीं होता, न पाप लगता है। शपथ की आड़ में इन्हें धन चाहिए... हलफनामे के लिफाफे में इनका पैगाम होता है-दक्षिणा दो, घूस दो, नहीं तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।"[16]

हमारे देश में भ्रष्टाचार की समस्या का सीधा सम्बन्ध भारतीय राजनीति से है। देश में जब से आज़ादी का आन्दोलन ख़त्म हुआ है, तब से राजनीति, लूट, भ्रष्टाचार, जातिवाद, मौकापरस्ती, आदि को बढ़ावा मिला है। राजनीति में कोई भी पार्टी सत्ता में आ जाये वह भ्रष्टाचार के ही पालन-पोषण में लग जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो आज के समय में राजनीति एक धंधा बन चुकी है, जिसका उद्देश्य खुद को सत्ता में बने। इसके लिए इन्हें जिस भी हद तक गिरना पड़े वो गिर जाते हैं। राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' में सवेरा गाँव जहाँ पानी की इतनी किल्लत है कि स्वामीराम की मृत्यु के समय पानी के अभाव में उसके घर के सारे बर्तन उलटे रखे हुए थे। चुनाव के समय की तैयारियां और मुख्यमंत्री के आगमन के समय गाँव के पूरे ढ़ांचे को ही परिवर्तित किया जा रहा है। परिवर्तन के नाम पर लूट मची हुई है- "कांट्रेक्टर और बिचौलिये, डीलर और दुकानदार लाला और उसके साथी ही थे। अनुभव भी उन्हें ही था। एक महीने में करीब चार करोड़ रूपये का निवेश सीधे या परोक्ष हुआ। लाला और साथियों की फर्मो ने कम से कम चालीस लाख का मुनाफा कमाया। इतना ही पैसा सरकारी जेबों में गया। इस मामले में बंदरबांट बराबर थी। सिर्फ एक क्षेत्र में कलेक्टर की मेहनत और कमरकसी रंग न ला सकी, सूखे और पानी के अभाव का कोई इलाज नहीं दिखा। स्पेशल ट्यूबवैल का ट्रायल किया गया, असफल रहा। 'पाताल तक पानी नहीं मिलेगा सर' इंजीनियर ने कहा। ऐसा डार्क एरिया मैंने आज तक नहीं देखा। बदहवासी में यहाँ तक सोचा गया कि टैंकरों में पानी मंगवाकर पोखर थोड़े भर दिए जाएँ, एक दिन की बात है।"[17]

हमारे देश में सांसद, विधायक चुनाव के माध्यम से आम जनता को ठगने की कोशिश में लगे रहते हैं। राजनीति और व्यवसाय तथा सरकारी और प्राइवेट का अंतर कम होता जा रहा है, क्योंकि दोनों ही जनता को ठगने का ही कार्य करती हैं। नेताओं और पूंजीपतियों का गठजोड़ होता है दोनों के मिली भगत से ही आम जनता बदहाली की स्थिति तक पहुंच रही है। यही स्थिति 'हलफनामे' में लाला की है। वह कलेक्टर और अन्य सरकारी अधिकारियों तक अपनी पैठ बनाए हुए हैं और उन्हीं के माध्यम से गरीब किसानों को आत्महत्या के कगार तक पहुंचा रहा है। नेता इन ठेकेदारों के भ्रष्टाचार में इनका भरपूर सहयोग करते हैं। चुनाव के समय किसान सिर्फ राजनेताओं के भाषण में मौजूद रहते हैं, सत्ता में आते ही सिर्फ उनके बड़े-बड़े भाषणों में किसान याद किए जाते हैं। सरकार के एजेंडे और बजट में किसान सिर्फ नाम मात्र के लिए मौजूद रहते हैं। प्रवीण कुमार ने अपने लेख 'निखर्ची कुदरती खेती : एक और जालिम जुमला' में राजनीति की सच्चाइयों को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "देश के प्रधानमंत्री से लेकर छुटभैये नेताओं तक आये दिन कभी आदमी की गर्दन पर हाथी का सिर लगाने की कभी धर्म ग्रंथो में हवाई जहाज और परमाणु बम के फ़ॉर्मूले होने की बेतुकी बातें करते रहते हैं। जनता का एक हिस्सा उनसे प्रभावित भी हो जाता है। लेकिन वास्तविक ज़िन्दगी में, जहाँ लोगों को जिंदा रहने के लिए कुछ पैदावार करनी होती है वहां ऐसी वाहियात बातों के लिए कोई जगह नहीं होती। सच तो यह है कि हमारे इन रहनुमाओं के घास खेती के संकट का कोई समाधान है ही नहीं। वे जुमलेबाज़ी करके केवल लोगों को बरगलाना चाहते हैं।"[18]

राजनेता किसानों और खेतिहर मजदूरों को मोहरा बनाकर सिर्फ सत्ता पाना चाहते हैं। सत्ता में आने के पश्चात उन्हें इन किसानों, मजदूरों की कोई आवश्यकता नहीं होती है। यही हालत मकई की होती है। वह मुख्यमंत्री के द्वारा सिर्फ इसलिए सम्मान का पात्र बनाया गया कि मुख्यमंत्री का दौरा मकई के गाँव में होना है और मुख्यमंत्री मकई को उसके पिता की मृत्यु का मुआवजा देकर सिर्फ अपना नाम कमाना चाहते हैं तथा जनता का मन जीतना चाहते हैं, इसलिए वे मकई को दस लाख का चेक देते हैं। चेक देने के बाद

जैसे ही जनता का ध्यान मकई की तरफ से हटता है वह मुख्यमंत्री के साथ स्टेज पर एक गैर ज़रूरी वस्तु बनकर रह गया है- "बीस मिनट तक मकई स्टेज पर खड़ा रहा था। यह कतई आसान नहीं था। यूँ भी कि न उसकी दरकार थी न ज़रुरत। जो दृश्यबंध था उसमें मकई की जागरूक दस्तक का कोई रोल नहीं था। किसान आत्महत्या के शास्त्रीय पाठ में मकई का कोई संवाद नहीं था। वह खैराती था, नमूना या बानगी सिर्फ पर राज्य की लीलाएं, प्रशासनिक धुन का आलाप, राजकाज की अभिव्यक्ति, ये सब दिल की आवाज़ और मन की निडर उड़ानों पर ताला नहीं डाल सकते।"[19]

स्वामीराम के आत्महत्या का कारण लाला है। वह यह जानता है कि इस इलाके में बोरिंग करने पर पानी की एक बूँद भी नहीं निकलेगी। फिर भी वह भोले-भाले किसानों को बहला-फुसलाकर अपना धंधा जमा रहा है। कलेक्टर से लेकर विधायक सांसद तक सभी जनता को मूर्ख बनाने में ही लगे रहते हैं। फिर भी मुख्यमंत्री अपने भाषण में जनता की तारीफें लूटने वाली बातें करते हैं और सामने से ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि वे ही जनता के सच्चे हितैषी हैं भले ही पीठ-पीछे वही जनता के खून चूसने का काम करते हैं- "मैंने आज सरकार की तरफ से भाई मकईराम को फाइन अदा किया है। क्योंकि भाई मकईराम की अपनी सरकार, किसानों की सरकार तमाम कोशिशों और सफलताओं के बावजूद उसके पिता को आत्महत्या करने से नहीं रोक पाई। इस दोष को परिवार का मुखिया होने के नाते मैं अपने सिर लेता हूँ और यह संकल्प करता हूँ कि हम वे सारी वजहें ख़त्म कर देंगे जो एक भी किसान का ऐसा अंत करती हैं।"[20] जिन समस्याओं में किसानों को फंसाने का ज़िम्मा ही सरकारी तंत्र ने ले रखा हो, भला वही उसे क्यों दूर करना चाहेगा, भारी-भारी वादों का इस्तेमाल वह भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाने में करती है।

पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद जो पेशे से खेतिहर मजदूर है। किंतु उसके पास दो एकड़ ज़मीन भी है। दो एकड़ ज़मीन में तो परिवार का गुज़ारा होने से रहा जैसे-जैसे दूसरों के खेतों पर मजदूरी करके या बटाई पर ज़मीन लेकर अपने परिवार का गुज़ारा कर रहा है। फिर भी हर वक़्त कोई न कोई समस्या उसे घेरे ही रहती है- "रामप्रसाद खुद भी दूसरों के खेतों में कुछ काम करके थोड़ा बहुत जुटा

लेता और जैसे-तैसे टेर हो जाती थी। या कभी किसी की खेती अधबटिया से ले लेता। दिन-रात खटता, अपने खेत में भी और अधबटिया से लिए गए खेत में भी। कहने को किसान और काम से मजदूर।"[21] रामप्रसाद की दशा तो पहले से ही दयनीय है। खेतिहर मजदूरों का जीवन तो पहले से ही समस्याओं से भरा रहता है। हर विभाग में सब कर्मचारियों के वेतन में हर साल बढ़ोत्तरी होती है सारी वस्तुओं के भाव बढ़ते हैं, किंतु जिन वस्तुओं या अनाज को किसान उपजाता है उनके मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है। इसलिए किसान और खेत-मजदूर का जीवन अभावग्रस्त ही बना रहता है। इसी वर्ग को हर जगह समझौता करना पड़ता है। एक बार देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कहा था-"अगर देश को विकास की तरफ बढ़ते देखना है तो गरीबों को और किसानों को ही सैक्रिफाइस करना होगा।"[22]

आज़ादी को इतने वर्ष हो गए आज भी हमारे देश में किसान और खेतिहर मजदूर ही समझौता कर रहे हैं। खेतिहर मजदूरों के सामने तो हमेशा रोज़गार की ही समस्या बनी रहती है। क्योंकि इनकी समस्या का जड़ ही रोज़गार का न मिलना है। इनकी हमेशा यही कोशिश रहती है कि किसी भी तरह से इनको पेट भरने के लिए अन्न मिलता रहे। वैभव सिंह के शब्दों में- "1911 में जमशेद जी टाटा भारत में भारी उद्योग की नींव डाल रहे थे। उसी के समानान्तर सर्वहारा वर्ग का उदय हो रहा था जो भारत की विशाल कृषक आबादी से निकलकर आये थे। भूखे-बेकार किसानों से निकले ये अकुशल श्रमिक किसी भी हालत में ज़िदा रहने की कोशिश करते थे और उनकी किसी मांग पर ध्यान न दिया जाता था। लेकिन रूसी क्रांति के बाद यह संभव हुआ कि उनके अधिकारों, संगठित होने की आवश्यकता आदि पर ध्यान दिया जाने लगा।"[23]

जब भी देश में आर्थिक मंदी की समस्या आती है तो सबसे पहले उसका प्रभाव मजदूरों पर पड़ता है। उनके सामने मजदूरी का संकट उत्पन्न हो जाता है और काम मिले भी तो उसका पारिश्रमिक बहुत ही कम कर दिया जाता है। सत्ता में आने से पहले तो मुख्यमंत्री खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को दूर करने का दावा करते हैं लेकिन उसके पश्चात उन्हें उनकी समस्याओं को दूर करने में कोई रूचि नहीं रह जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री चरण सिंह जो किसान एवं खेतिहर मजदूरों की समस्याओं पर गौर फरमाते रहे लेकिन सत्ता में आने के पश्चात उन्होंने उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सुकोमल सेन के शब्दों में- "प्रधानमंत्री चरण सिंह किसानों की दरिद्रता की बात करते रहे परन्तु उनके दुखों को कम करने का एक भी उपाय नहीं किया। उन्होंने किसानों के हित में एक भी नीति नहीं बनाई, यह बताने की भी कोशिश नहीं की कि भूमि का केन्द्रीकरण किसानों की दरिद्रता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों में दस प्रतिशत लोगों के पास उन साधनों का केवल 0.1 प्रतिशत (दशांस) है। उन्होंने तो खेत मजदूरों की अच्छी मजदूरी की बात की न किसानों के कर्जों को समाप्त करने की बात की। मजदूर वर्ग का विरोध करते हुए चरण सिंह ने वास्तव में भूस्वामी वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया और खेत मजदूरों और गरीब किसानों के हित की कोई बात नहीं की।"[24] खेतिहर मजदूर जिनके अंतर्गत भूमिहीन किसान, बंटाईदार किसान एवं सीमांत किसान शामिल हैं। रामप्रसाद वही सीमांत किसान है। जिसके पास नाम मात्र की ज़मीन है। वह खेत की बुआई के समय से ही लागत और बचत का अनुमान लगाता रहता है। सारा खर्च जोड़ने के बाद परिवार के खाने के लिए भी तो कुछ अनाज बचाना होता है। लागत और परिवार के पोषण के लिए बचाए अन्न के सिवा ऐसा कुछ भी उसके पास नहीं बचता कि वह परिवार का कोई और भी कार्य कर सके। इसके अलावा जो खेत उसने बंटाई पर ले रखा है उसकी लागत की चिंता सो अलग से ही है- "सामान्य रूप से दस हज़ार रूपये प्रति एकड़ की दर से किसान ठेके पर खेत लेता है एक फसल के लिए। एक एकड़ में उपजाता है अट्ठारह क्विन्टल या सत्ताईस हज़ार का गेहूं और लागत पन्द्रह हज़ार, साथ में दस हज़ार ठेके का मिला कर पच्चीस हज़ार रूपये। मतलब बचत दो हज़ार रुपये। इसलिए छोटे किसान का पूरा परिवार खेतों में मजदूर की तरह लगा रहता है। ताकि मजदूरी वाले पैसे को ही बचा सके।"[25]

देश में बैंकों द्वारा भ्रष्टाचार की ख़बरें आये दिन समाचार में आती रहती हैं। नीरव मोदी और विजय माल्या जैसे लोग बैंकों की संपति लेकर फरार हो जाते हैं। देश की सरकारें उनके खिलाफ कोई भी ठोस कदम नहीं उठाती हैं। किंतु हमारे देश का अन्नदाता जो स्वयं दुखों को सहता है। खेतिहर मजदूर जो अपने

श्रम से इन्हीं पूंजीपतियों का पेट भरते हैं। उनके नाम पर बैंकों से फर्जी नोटिस देकर इन पर क़र्ज़ थोप दिया जाता है। रामप्रसाद जिसने कभी बैंक से लोन लिया ही नहीं, फिर भी उसके नाम पर बैंक से जारी कर दिया गया कि उसने तीस हज़ार का लोन लिया है। अगर उसने निर्धारित समय तक बकाया राशि नहीं जमा किया तो उसकी ज़मीन कुर्की कर दी जाएगी- "सूचना पत्र कह रहा था कि रामप्रसाद ने उसकी दो एकड़ ज़मीन पर जो क्रेडिट कार्ड बनवाया था और उस क्रेडिट कार्ड से उसने जो तीस हज़ार रुपये निकाल लिए थे, वह राशि दिसंबर तक जमा करनी थी लेकिन अभी फ़रवरी भी खत्म हो रही है और उसने वह पैसा जमा नहीं किया है। इसलिए यह रेवेन्यु सर्टिफिकेट जारी किया गया है। और उसमे एक समय सीमा दी गयी है। अगर उसने समय सीमा में बैंक जाकर पैसा नहीं जमा करवाया, तो कुर्की की कार्यवाही की जाएगी। कुर्की। कुर्की शब्द कितना भयावह होता है, यह केवल और केवल भारत का छोटा किसान ही बता सकता है।"[26]

किसानों को महाजन, सूदखोर तो लूटते ही रहते हैं। साथ ही उनको सुविधा देने के लिए बैंक में जो योजनायें चलाई गयी हैं। बैंक उनका दुरूपयोग करके किसानों को अपने जाल में फंसा रही है। खेतिहर मजदूर जिनमें शिक्षा का अभाव है वे बैंक आदि के कार्यों को समझने में सक्षम नहीं होते हैं उन्हें तो छोटी से छोटी चीज़ पढ़ने के लिए भी दूसरों के पास जाना पड़ता है। रामप्रसाद निरक्षर है वह तो नोटिस भी गाँव के मास्टर साहब से ही पढ़ कर समझ पाता है। जो क़र्ज़ उसने लिया ही नहीं वो उस पर ज़बरदस्ती ही थोपा जा रहा था- "रामप्रसाद ने जब पूरा नोटिस मास्टर के मुंह से सुना, तो वह माथा पकड़ कर वहीं मास्टर साहब के पास बैठ गया। किसान क्रेडिट कार्ड ? उसने कब बनवाया ? और कब बैंक से पैसे निकलवाए? वह भी तीस हज़ार ? कब ? उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये।"[27]

बैंक वाले खेतिहर मजदूरों से बहुत ही मुस्तैदी से क़र्ज़ वसूल करते हैं। रामप्रसाद ने तो कोई क़र्ज़ ही नहीं लिया था, फिर भी उसके नाम पर नोटिस जारी कर दिया बैंक ने। बैंक के कर्मचारियों और ऋण पास कराने वाले दलाल आपस में मिलकर किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के नाम पर फर्जी तरीके से लोन

पास करवा लेते हैं और बैंक से नोटिस मिलती है मजदूरों को, यानि की क़र्ज़ लिया है बिचौलिये ने और उसकी भरपाई करनी होती है मजदूरों को। रामप्रसाद जैसे किसान इन्हीं बिचौलिए और बैंक की धोखाधड़ी का शिकार होते हैं- "बिचौलिये और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं। 6 महीने बाद पूरा पैसा जमाकर देते हैं और फिर उसी खाते में एक बार फिर से लोन ले लेते हैं। पैसा जमा हो जाता है, तो किसी को कोई परेशानी नहीं होती। किसान को पता तक नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है।"[28]

रामप्रसाद जो पहले से ही ज़हालत का जीवन जी रहा है ऊपर से फर्जी लोन कहाँ से अदा कर पायेगा। बैंक मेनेजर से लेकर कलेक्टर तक को पता है कि किसानों के साथ धोखा हुआ है उन पर ज़बरदस्ती क़र्ज़ मढ़ा जा रहा है। उन्हें यह भी पता होता है कि इन सब के पीछे किसी बिचौलिये का हाथ है फिर भी ऐसे दलालों को ढूढ़ने और सजा देने की वजाय किसानों को ही अपने शोषण का जरिया बनाते हैं। रामप्रसाद जिले के कलेक्टर श्रीराम के आगे हाथ-जोड़कर रोता गिड़गिड़ाता है कि वो उसे इस समस्या से छुटकारा दिलाए फिर भी कलेक्टर को उस पर कोई दया नहीं आती। वह अपने को बचाने के लिए राकेश पांडे से कहते हैं- "यहाँ के सारे अर्दलियों को भी समझा दो कि उत्सव के बाद इस प्रकार का कोई किसान यहाँ आता है आवेदन लेकर तो उसे मुझसे मिलने न दें, और कैंपस में ही नहीं खड़ा होने दो। सीधे कहो कि बैंक में जाईये यह बैंक का मामला है, इसमें कलेक्टर का कोई काम नहीं है। यह जो आज खड़ा था सूखा पानी का किसान, दिन-भर का भूखा, अगर वहीं पर बेहोश होकर गिर जाता, मर जाता, तो ...? हम क्यों बिना मतलब के यह सिरदर्द झेलें। उसकी हालत देखी थी, अब मरता कि तब मरता। मोटी-मोटी हैडिंग छपती समाचार पत्रों में कि धोखाधड़ी के शिकार किसान ने कलेक्टर कैंपस में कलेक्टर के सामने अपनी जान दी। खुद तो मरता, साथ में हमें भी मरवा जाता'। श्रीराम परिहार ने कुछ हिकारत के साथ कहा।"[29]

यह है हमारे शासनतंत्र की सच्चाई जो सारा सच जानते हुए भी किसानों से कोई हमदर्दी नहीं रखते हैं। उन्हें सिर्फ इस बात की चिंता है कि उत्सव आयोजन के लिए बजट को किस तरह से कहाँ-कहाँ पर लगाना है। जिससे अधिक से अधिक बचत कर अपनी जेबों को गर्म किया जा सके। मजदूर और किसान को मरना है तो मरे उससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। रामप्रसाद अपने साथ कागजों का पुलिंदा लेकर दर-बदर भटक रहा है किंतु उसकी कहीं कोई सुनवाई नहीं होती है। उसे डर है कि उसके पास जो थोड़ी सी ज़मीन है वह भी कुर्की कर दी जाएगी क्योंकि बैंक मजदूरों और किसानों के साथ क़र्ज़ वसूली में कोई रियायत नहीं बरतती है। रविभूषण के शब्दों में- "किसान की ऋण ग्रस्तता पर विचार करने वालों ने यह माना है कि बैंक से कहीं अधिक ब्याज गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां लेती हैं, जिनकी भूमिका और एकजुटता पर कम ध्यान दिया जाता है। किसानों पर बैंक कार्य सर्वाधिक है। बैंक से बाहर का क़र्ज़ तीन लाख करोड़ है। बैंक जितनी मुस्तैदी से किसानों से ऋण वसूलता है उतनी मुस्तैदी से कॉर्पोरेटों से नहीं।"[30]

पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' के रामप्रसाद के सामने अभी बैंक की धोखाधड़ी का लोन है ही। एक समस्या ख़त्म नहीं हुई कि बारिश से उसकी सारी फसल तबाह हो गयी। उसके जीवन में समस्याएं परत दर परत खुलती जा रही हैं। पटवारी रामप्रसाद को धमका रहा है कि बैंक का क़र्ज़ तो तुम्हारे ही नाम पर है और वो चुकाना भी तुम्हीं को पड़ेगा। रामप्रसाद तो एक बंटाईदार किसान यानि कि खेतिहर मजदूर है। बारिश से नष्ट हुई फसल की चिंता मन ही मन उसे खाए जा रही है। बैंक का क़र्ज़ ऊपर से फसल की बर्बादी कहाँ से वह क़र्ज़ चुका पायेगा। सारे किसान कलेक्टर ऑफिस के बाहर अपनी गेहूं के बालियों को लेकर खड़े हैं। अपने सामने से किसानों को हटाने के लिए कलेक्टर की तरफ से उन्हें बोल दिया जाता है कि पटवारी जाकर किसानों की नष्ट हुई फसल का जायजा लेगा और सबको मुआवजा मिलेगा। बंटाईदार किसान की सबसे बड़ी समस्या है कि उसने जिसकी ज़मीन को बंटाई पर ले रखी है उसमें लागत तो मजदूर को ही लगानी पड़ती है। मालिक को तो सिर्फ मुनाफे से मतलब है। रामप्रसाद पटवारी के पूछने पर बताता है कि उसने जो भी ज़मीन बंटाई पर ले रखी थी उसकी सारी फसल नष्ट हो

गयी है। यहाँ तक कि अब उसके घर में खाने तक के लिए अनाज नहीं बचेगा। पटवारी उससे कहता है- “अधकरी को मुआवजो थारे थोड़ी मिलेगो, जिसकी ज़मीन है उसको मिलेगो। तू तो अपनी ज़मीन की बात कर। जो थारे नाम से है वो ज़मीन। कित्ती ज़मीन है थारे पास ? दो एकड़ और तीन डेसीमल। ऋण पुस्तिका में देखते हुए पटवारी अपने रजिस्टर में लिखा-पढ़ी करने लगा। ‘पन साब बोई तो मैंने ही थी उस ज़मीन में भी फसल। खाद-पानी, बीज, सब तो मैंने ही कियो थो। नुक्सान तो म्हारे हुओ है, ज़मीन मालिक तो अभी भी म्हारे माथे पर खडयो है, अपना पैसा लेने। मुआवजा भी वो इ ले लेगो तो म्हारो नुकसान को कइ होयगो साब ? रामप्रसाद ने अपनी व्यथा सुनाई।”[31] रामप्रसाद या कोई भी किसान कितना भी रोये गिड़गिड़ाए पटवारी या कोई भी सरकारी अफसर उनकी कोई भी बात नहीं सुनता।

मजदूर की सम्पूर्ण लागत और मेहनत उस दिन ख़राब हो जाती है जब उसकी फसल नष्ट हो जाती है। किंतु फसल नष्ट होने पर उसका मुआवजा मिलता है ज़मीन के मालिक को और नुकसान होता है मजदूर को। यही दशा रामप्रसाद की है। अपनी ज़मीन का मुआवजा प्राप्त करने के लिए भी उसे पटवारी को घूस देनी पड़ती है। हमारे समाज में भ्रष्टाचार का बोल-बाला इतना बढ़ गया है कि फसल भी ख़राब हो तो मुआवजा प्राप्त करने के लिए भी घूस देना पड़ता है। तभी पटवारी पीड़ित की श्रेणी में उस मजदूर का नाम अंकित करेगा। रामप्रसाद तो पहले से ही विपत्तियों और समस्याओं का मारा है उस बेचारे के पास घूस की राशि कहाँ से आएगी लेकिन उसकी इन समस्याओं को सुनने वाला कौन है। उसने पटवारी से लाख मिन्नतें की लेकिन पटवारी ने उससे साफ़ शब्दों में कह दिया- “कहने से कुछ नहीं होता, देने से होता है। भेंट पूजा करनी पड़ती है रिपोर्ट लिखवाने के लिए। कुछ लाया है क्या ? लाया हो तो दे दे, मै ग्राम सेवक को दे दूंगा, वह ठीक से रिपोर्ट बना देंगे। वैसे नहीं बनाता कोई भी रिपोर्ट।”[32]

हमारे देश में हर जगह लूट का व्यापार चल रहा है। जिसमें आमजन अधिक फंस रहे हैं। हमारा देश वैसे भी अन्य देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय में बहुत पीछे है। उनमें भी किसान और उसके बाद खेतिहर मजदूर ये तो अपने गुजारे लायक राशि भी कमाने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में यदि इस वर्ग से

रिश्वत ली जाती है तो वह कैसे दे पायेगा। खेतिहर मजदूर और बंटाईदार किसान तो पहले से ही मजदूरी पर जीवित रह रहे हैं। फसल और मजदूरी ही जिनके जीवन जीने का सहारा है यदि वही किसी कारणवश उनसे छिन जाये तो उनके लिए जीवन और भी मुश्किल हो जाता है। रामप्रसाद पहले ही अपनी समस्याओं में घिरा हुआ है ऊपर से मुआवज़े की राशि पाने के लिए भी उससे रिश्वत मांगी जा रही है- "देख भाई पैसे का काम पैसे से ही होता है, बात से नहीं होता। तू यहाँ खड़े होकर कितनी ही बात कर ले लेकिन, काम तो होगा पैसों से ही। देख ले अभी व्यवस्था हो जाये तो ठीक है, नहीं तो व्यवस्था करके आ जाना तहसील में मेरे पास। अभी तो टाइम लगेगा रिपोर्ट बनने में। तेरी कितनी ज़मीन है, दो एकड़ और तीन डेसीमल, तो उस हिसाब से दो हज़ार तीन सौ रुपये लेकर आ जाना। पटवारी ने समझाते हुए कहा।"[33]

बैंक और सरकारी कर्मचारी होते तो हैं किसानों और मजदूरों की मदद करने के लिए लेकिन मदद के नाम पर ये उनकी समस्याओं को बढ़ाने का काम ही करते हैं। रामप्रसाद ने तो बैंक से क़र्ज़ भी नहीं लिया फिर भी उसके नाम पर नोटिस जारी कर दिया गया। बारिश से फसल नष्ट हो गई उस पर भी उसे मुआवजा नहीं मिल सकता क्योंकि उसकी स्वयं की ज़मीन नहीं है।

बैंक और सरकारी कर्मचारियों का भ्रष्टाचार सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में भी दिखाई पड़ता है। युनुस नाम का किसान है काम से वह खेतिहर मजदूर है। वह पानी की समस्या को दूर करने के लिए अपने खेत में कुआं खुदवाना चाहता है किंतु इसके लिए पैसे चाहिए। युनुस तो पहले से ही मजदूरी करके अपनी जीविका चला रहा है कुआं कहाँ से खुदवाएगा। उसने निश्चय किया कि वह और उसका परिवार स्वयं मिलकर खेत में कुआं बनाएंगे। सुबह से शाम तक युनुस का पूरा परिवार खेत में कुआं खोदता रहता। उनकी मेहनत उस दिन बेकार चली गई जब उनके खेत में कुँए वाली जगह पर भारी काला पत्थर निकल आया- "खुदाई का काम चलते-चलते तीन महीने हो गए थे। कुँए में छः सात हाथ पर काला पत्थर निकल आया था। पत्थर भी ऐसा स्याह और कड़क की गैंती की चोट पड़ते ही चिंगारियां फूटती और गैंती का अगला हिस्सा मुड़कर टेढ़ा हो जाता। गैंती चलाते-चलाते युनुस और यास्मिन पसीने से नहा

जाते। उनके हाथों के छाले सूखकर छोटी-छोटी गठानों में बदल गए थे। पोर-पोर दर्द से भर गया था। ठंडी या गरम हवा ज़रा भी शरीर को छूती तो दर्द के मारे कराह निकल जाती। कई दिनों की हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी चट्टान दो-चार इंच से ज्यादा नहीं दरकी।"[34]

खेत में कुँए की खुदाई में युनुस के परिवार ने जी-जान लगा दिया, फिर भी उनकी मेहनत कोई रंग न ला सकी। वह जब मजदूरी के लिए काम की तलाश में जनपद गया तो वहां पर उसके पैरों तले की ज़मीन खिसक गयी। जब उसे पता चला कि उसके नाम पर कूप निर्माण योजना के तहत एक लाख का क़र्ज़ निकाला गया है। युनुस ये खबर सुनकर हक्का बक्का रह जाता है क्योंकि खेत में कुँए की खुदाई का काम तो वह और उसका परिवार करता था फिर कर्ज किसने लिया। जब वह अपने सरपंच से इस धांधली के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने उसे फटकारते और धमकाते हुए अपना और सरकारी भ्रष्टाचार का बखान इन शब्दों में किया- "हाँ, मैंने तमारा सबका अंगूठा लगा के पैसा हेड़िया। तमारे जहां जानो है जाओ। कलेक्टर पास जाओ, मुखमंतरी पास जाओ और हो सके तो प्रधानमंत्री पास भी चलिया जाओ।..... मै एकलो पैसा थोड़ी खाऊँ हूँ। बैंक से लगाके तो जनपद का बाबू, इंजीनियर, सीओ, कलेक्टर सबके पैसा दूँ हूँ। कौन से शिकायत करोगा। पैसा कौन नी खाय। मुखमंतरी तगाद रिश्वत ले है। बस उनका हिसाब से पैसा पोंचाने की अकल होनी चाहिए।"[35]

एक खेतिहर मजदूर और किसान के समक्ष यदि कोई सरकारी कर्मचारी इस तरह का धौंस दिखाए तो उस पर क्या गुजरती है। यह युनुस ही जानता है। युनुस को बैंक के नोटिस के साथ ही यह भी नोटिस मिला है कि यदि वह निर्धारित समय तक लोन नहीं चुका पाया तो उसकी ज़मीन की नीलामी कर दी जाएगी। युनुस तो पहले ही क़र्ज़ में डूबा है और बैंक की नोटिस पाकर उसका दर्द दुगना हो गया। बैंक के फर्जीवाड़े की ऐसी अनेक घटनाएँ सामने आती है जिसमें किसान क़र्ज़ तो लेता है 6000 का और उसे बना दिया जाता है साठ हज़ार। जाने माने पत्रकार पी.साईंनाथ के अनुसार- "अनेक मामलों में यह देखा गया है कि 8000 रुपए की ऋण राशि में से छोटे सरकारी अधिकारियों और स्थानीय बैंक अधिकारियों के

हिस्से में लगभग 3000 रुपए चला जाता है। लेकिन कर्जदाता को एक दस्तावेज़ पर अंगूठे का निशान लगाकर यह ऐलान करना पड़ता है कि उसे 8000 रूपए मिले। उसे इसी राशि पर ब्याज की रकम अदा करनी पड़ती है जबकि यथार्थ में उसे केवल 5000 रुपया ही मिल सका। अगर इस पर गौर करें तो हम पाएंगे कि उसे 20 प्रतिशत के हिसाब से ब्याज देना पड़ा जो व्यापारिक बैंकों की निर्धारित दरों से भी ज्यादा है। इसके अलावा उसे वह तीन हज़ार रुपया लौटाना पड़ता है जो उसने ऋण के रूप में कभी लिया ही नहीं।"[36]

सर्वप्रथम तो बैंक वाले खेतिहर मजदूर को अपने जाल में फंसाकर उन पर कर्ज थोपते हैं तत्पश्चात मजदूर उससे छुटकारा पाने के लिए जब कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगाता है तो उसे वहां भी वकीलों और बाबुओं की जेब गर्म करनी पड़ती है क्योंकि बिना घूस लिए वहां भी उसकी कोई सुनवाई नहीं होती है। बैंक और सरपंच की धोखाधड़ी का शिकार युनुस लोन को चुकाने के लिए पुन: लोन लेने की सोच रहा है। लेकिन बैंक में यदि कोई मजदूर डिफाल्टर घोषित कर दिया जाता है अर्थात जिसने निकाले गए लोन को समय से अदा न किया हो तो उसे बैंक दोबारा लोन नहीं देती है। किसी तरह से यदि लोन देने के लिए तैयार भी हो जाये तो उसके लिए भी रिश्वत देनी पड़ती है। रामेश्वर युनुस को समझाते हुए कहता है- "यूँ तो तम सब डिफाल्टर हो। नियम से तो कोई बैंक तमारे लोन नी दे सके। पर यो मनीजर बोहत भलो और बात को धनी है। उने खुल्ली की है एक केस पे पांच हज़ार लेगो।"[37] आए दिन हमें अखबारों में बैंकों के फर्जीवाड़े की खबरें सुनाई देती हैं। बैंक देश के पूंजीपतियों और अमीरों को आगे बढ़ाने में अपना भरपूर सहयोग देती है। उनके द्वारा लिए गये कर्ज की रकम कभी सबके सामने नहीं आने पाती है। क्योंकि सरकार ने इन पूंजीपतियों और बैंकों को भ्रष्टाचार और लूट फ़ैलाने की खुली छूट दे रखी है। लालच, बेइमानी और भी कई बुराईयां मानव समाज में हमेशा से व्याप्त रही है किंतु आधुनिक पूंजीवादी और वैश्वीकरण के दौर में ये अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी हैं। पूंजीवादी विकास के दौर में मनुष्य में भोग करने की प्रवृति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसी कारण मनुष्य की मानवीय प्रवृतियों का लोप हो रहा

है। मनुष्य लगातार सफलता पाने की लालच में लूट, खसोट, छल-कपट तथा जहाँ तक हो पाता है कानून व्यवस्था को अपने हिसाब से तोड़ने मरोड़ने की कोशिश में लगा रहता है। यह इस दौर में बदलते परिवेश के कारण है। इन परिस्थितियों में हमारा कृषक समाज और खासकर खेतिहर मजदूर बिलकुल भी नहीं फिट बैठता यही कारण है कि वह शोषण का शिकार है।

विकास के दौर में सरकार के पास औद्योगिक घरानों के लिए बजट होता है। वह पूंजीपतियों के कर्ज को माफ़ कर सकती है। किंतु किसानों की समस्याओं को नहीं दूर करना चाहती है। वह गरीब मजदूरों की समस्याओं को बैंक और सरकारी कर्मचारियों की मदद से और भी बढ़ाने का काम करती है। डॉ. सुरजीत बराड़ ने इस बारे में स्पष्ट करते हुए लिखा है- "सरकार लगभग हर साल करोड़ों रूपए टैक्स की छूट औद्योगिक घरानों को देती है। यहाँ अदानी ग्रुप के बारे में बात करना मुनासिब होगा कि देश का यह पहला ऐसा कारोबारी है, जिसे किसी विदेशी सौदे के लिए भारतीय स्टेट बैंक से 2014 में एक बिलियन डॉलर (लगभग 6000 करोड़ रूपए) दिया गया, जबकि पहले ही इस ग्रुप के सिर पर बैंकों का 65000 करोड़ रुपया खड़ा है। सरकार की मिलीभगत के कारण अदानी ग्रुप ने बैंकों का कर्ज लौटाया ही नहीं। तथ्य ये भी है कि देश में अमीर और भी अमीर हो रहे हैं।"[38]

ज़ाहिर सी बात है कि समाज के जिस वर्ग को सरकार ही गर्त में ढकेलना चाहती है वह कहाँ तक प्रशासन से लड़ पाएगा। एक न एक दिन वह शासन तंत्र के सामने घुटने टेक ही देगा। जैसा की युनुस के साथ भी हुआ। उसकी लाख कोशिशों के बावजूद वह यह सिद्ध नहीं कर पाया कि खेत में कुंए की खुदाई वह और उसके परिवार ने मिलकर की है।

राजनीति, जिसे एक तरह से कानूनी रूप से भ्रष्टाचार और लूट करने की मान्यता मिली हुई है। क्योंकि ये राजनेता सफेद पोशाक के पीछे कोई भी काम करें इन पर अंगुली उठाना आसान नहीं होता है। कोई व्यक्ति कितना ही ईमानदार क्यों न हो राजनीति में पहुंचते ही उसका अपना अलग रंग ही हो जाता है। आज़ादी के बाद से ही समाज में भ्रष्टाचार का मुद्दा एक चर्चा का विषय रहा है। इस भ्रष्टाचार में हमारे

देश के सांसद, विधायक, पुलिस, कोर्ट-कचहरी एक तरह से सब शामिल होते हैं इसलिए इसे समाज से ख़त्म करना और भी मुश्किल काम है।

एस.आर.हरनोट के 'हिडिम्ब' उपन्यास में शावणू का पूरा जीवन ही मंत्री के कारण तबाह हो जाता है। शावणू अपनी जिस ज़मीन को देव का प्रसाद समझकर उस पर खेती कर रहा है। वह मंत्री की आँखों को चुभ जाती है। समाज में बुराई तब ज्यादा पनपती है जब बुरा करने वालों का और भी लोग सहयोग करते हैं। पटवारी अपना प्रमोशन पाने की लालच में शावणू की ज़मीन मंत्री को देने के लिए हर हथकंडे अपना लेता है- "शावणू की जो वास्तविक ज़मीन थी उसके साथ कई बीघों का एक चरांद भी था। पटवारी ने उसे भी शावणू के नाम ही लगा दिया।...जब यह बात मंत्री को पता चलेगी तो वह कितना खुश होगा। इसका सारा श्रेय भी तो उसी को जायेगा। जो काम मंत्री की फौज कई बरसों में भी न कर सकी वह काम आज उसने पलक झपकते ही कर दिया। उसके एवज में प्रमोशन ही मिल जाए ? यह सोचते हुए उसने सारे कागज़ तैयार किए और शावणू को पकड़ा दिए।"[39]

शावणू की ज़मीन को हथियाने के लिए पटवारी के साथ मिलकर मंत्री ने क्या-क्या हथकंडे नहीं अपनाए वह विकास की आड़ में शावणू से ज़मीन लेना चाहता है। मंत्रियों को ऐसे कई अधिकार मिले हैं, जिनका प्रयोग करके वो आमजन की कोई भी वस्तु आसानी से हथिया सकते हैं। नेता अपने इन अधिकारों का प्रयोग अपने निजी स्वार्थ के लिए भी करते हैं। वह शावणू की ज़मीन को हड़पकर उस पर खुद का व्यापार करना चाहते हैं और नाम विकास का दिया जा रहा है। कुछ भी हो इस ज़मीन को शावणू से हड़पने के लिए उन्होंने सारे हथकंडे अपना लिए जब बात सीधी न बनी तो मंत्री के शुभचिंतकों ने गुंडागर्दी का मार्ग अपनाया। शावणू के बेटे को मार दिया गया। उसकी पत्नी का बलात्कार कर उसे पागल बना दिया। शावणू के हँसते खेलते संपन्न परिवार को मंत्री ने जड़ से नष्ट कर दिया। इन सब कारनामों में मंत्री की मदद पटवारी ने पूरी शिद्दत से की। वह पहले तो शावणू को पैसों का लालच देता है- "देख शावणू ! तू जानता है म्हारे मंत्री को तेरी ज़मीन कितनी पसंद है। फिर उनकी पसंद सिर-माथे। बोल कितणा पैसा लेणा है तेरे

को। अभी बोलेगा तो शाम को मुंह मांगे दाम तेरे हवाले बोल-बोल।"[40] समाज में भ्रष्टाचार का शिकार आमजन किसान मजदूर और समाज के निम्न वर्ग के लोग होते हैं। क्योंकि ये न तो उसके खिलाफ कोई कदम उठा सकते हैं न ही इनकी कोई सुनता है। इसलिए ये मजबूर होकर शासन सत्ता पूंजीपति के द्वारा दिए जा रहे यातनाओं को सहते जा रहे हैं। यही हाल शावणू का होता है। जो मंत्री के द्वारा दिए जा रही यातनाओं को चुपचाप सह रहा है क्योंकि उसके पास और कोई रास्ता भी नहीं है। यदि वह उनके खिलाफ शिकायत भी करना चाहे तो किससे करेगा आखिर उसे फंसा भी तो वही लोग रहे हैं, जिनके पास वह शिकायत दर्ज करवाने जाएगा। यही कारण है वह अपनी समस्याओं से खुद ही जूझ रहा है।

भ्रष्टाचार और शासनतंत्र समाज में सिर्फ आमजन को ही अपना शिकार बनाते हैं क्योंकि इस वर्ग के पास इनका विरोध करने की ताकत नहीं होती है। ये चुपचाप इनके अत्याचार को सहते रहते हैं। किसान हो या खेतिहर मजदूर दोनों ही शासनतंत्र के इस रवैये का शिकार हो रहे हैं। हाँ किसान के पास ज़मीन है तो वह किसी तरह के भ्रष्टाचार का शिकार होता है और खेतिहर मजदूर जिनमें भूमिहीन, बंटाईदार और सीमांत किसान हैं, वो दूसरी तरह से उनके अत्याचारों को सहने पर मजबूर हैं। लेकिन बचता दोनों में से कोई भी नहीं है जिसे शासनतंत्र की मार न पड़ती हो।

5.2 सरकारी नीतियां और किसान एवं खेतिहर मजदूर की दशा

देश को आजाद हुए सात दशक से अधिक का समय हो गया, फिर भी भारत में किसान बदहाली का जीवन जीने को मजबूर हैं। इन दशकों में जो भी सरकारें आयीं और गयीं, इनमें से अधिकतम ने किसान और खेतिहर मजदूरों को अपनी राजनीति का जरिया बनाकर सिर्फ अपना उल्लू ही सीधा किया है। किसान और खेतिहर मजदूरों पर समाज में राजनीति तो स्वतंत्रता के बाद से ही होती रही किंतु यह इनका दुर्भाग्य ही है कि इस वर्ग को लेकर कोई ऐसी नीति नहीं बन पाई है जो इनकी समस्याओं को कम कर सके। किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के हितों एवं उनकी तरक्की के बारे में तो देश का हर नेता दुहाई देता रहा लेकिन व्यावहारिक स्तर पर इनके लिए ऐसा कोई कार्य नहीं किया गया जिससे इनकी समस्याएं कम

हुई हों। ये नेता और चुनावी पार्टियां अपनी बातों में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को चाहे जितना शामिल किए करें अप्रत्यक्ष रूप से ये इनको ठगने का कार्य ही करती हैं। संजय रोकड़े के अनुसार- "आज भी किसान जग की जोर के समान है, जो भी दल केंद्र या राज्य की सत्ता पर काबिज़ होता है वह किसान को परेशान करता है। असल में अब किसान को राजनीति नहीं बल्कि नीति की दरकार है, लेकिन यह अभी भी कहीं नहीं दिखाई देती है।"[41] किसानों एवं खेतिहर मजदूरों का विकास न होने का सिर्फ एक ही कारण है कि देश में कोई भी शासक वर्ग उनकी समस्याओं को सचमुच दूर नहीं करना चाहता है। वह सिर्फ चुनावी वादे करता है। जिनसे एक बार जनता का मन जीतकर किसी तरह से सत्ता पर कब्ज़ा ज़मा लें।

चुनाव के हर पांच साल बाद पार्टियों को किसानों की याद आती है। क्योंकि किसान देश की सत्ता दिलाने का मजबूत हथियार हैं। यदि सरकार को किसानों के मदद के बगैर सत्ता हासिल हो जाये तो वे न तो चुनाव के पहले न चुनाव के बाद किसानों एवं मजदूरों को अपने आसपास फटकने ही न दें। सत्ता में आने के बाद एक पार्टी दूसरी पार्टी द्वारा बनाई गई योजनाओं को हटाने और अपने द्वारा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के हितों में नई योजनाएं बनाने का काम ही करती रहती हैं। लेकिन इनमें से ठीक तरह से कारगर कोई भी योजनायें नहीं होती हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस जो सरकार द्वारा बनाई गयी नीतियों का ही शिकार है। किसानों एवं मजदूरों के लिए जो भी नीतियाँ लागू की जाती हैं वह उन पर अमल करने की कोशिश तो करता है लेकिन ठीक जानकारी न होने के कारण वह उनके दुष्परिणामों को झेलता रहता है। भारतीय किसान जीवनभर अपनी किस्मत ही आजमाता रहता है। जब भी सरकार की तरफ से कोई योजना आती है तो वह प्रफुल्लित हो उठता है। उसे लगता है कि शायद इस तरह का रास्ता अपनाने से उसकी समस्याएं कम हो जाएँ लेकिन ऐसा कभी नहीं होता है। युनुस पानी की कमी को दूर करने के लिए अपने दो एकड़ खेत भीमा बा के पास गिरवी रख देता है। वह बोरिंग तो करवाता है, लेकिन उसमें से पानी नहीं निकलता है। वह अब तक सीमांत किसान था और आज से पूर्णत: भूमिहीन हो गया, जिसका गुज़ारा सिर्फ मजदूरी करने से ही हो सकता है। दिनेश जब युनुस से पूछता है-

“अब क्या करोगे ? तुमने तो ट्यूबवेल के चक्कर में दो एकड़ ज़मीन भी गिरवी रख दी” ! दिनेश को सोच-सोच के सिहरन हो रही थी। उन्दरा का छोरा-छोरी दर खोदने सिवा और कई कर सके। मजूरी करांगा। घर भर का कल से भीमा बा के यहाँ दाड़्की करने जाएँगा।”[42] जब तक किसान के पास ज़मीन रहती है, तब तक उसके पास उम्मीद भी बनी रहती है। वह अपने खेत और फसल के सहारे कम से कम अपने सपनों को तो जीता है, लेकिन खेतिहर मजदूर बनते ही उसके सपने भी मर जाते हैं क्योंकि वह अब सपना भी किसके सहारे देखे। अब तो उसकी ज़िन्दगी भी एक काम खोजने से दूसरे काम खोजने तक सिमट कर रह जाती है। वे कभी बंटाई पर ज़मीन लेकर खेती करते हैं तो कभी दूसरे के खेतों में मजदूरी करने की आस लगाए बैठे रहते हैं। ये मजदूर जब खेतों में काम नहीं मिलता तो सरकार द्वारा मजदूरों के लिए जो अन्य योजनाएं चलाई गई है उसमें काम खोजने के लिए चक्कर लगाते रहते हैं। आशुतोष के अनुसार- “जिनके पास खेती की ज़मीन नहीं होती है और केवल दो से तीन कमरों का मकान बनाने की ज़मीन होती है उन भूमिहीन किसानों की अवस्था भूमि वाले किसानों से ज्यादा खराब है। वे अपनी रोजी-रोटी के लिए बंटाई की खेती पर निर्भर रहते हैं। खेती में फसलों की बुआई, निराई, गुड़ाई और कुछ अन्य मौकों पर ही रोज़गार उपलब्ध होता है। इससे भूमिहीन किसान और खेत मजदूर बाकी समय बेरोजगार रहते हैं। ऐसे समय में वे दिहाड़ी मजदूरी, मनरेगा में अस्थाई मजदूरी या गांवों के अन्य छोटे-मोटे काम जैसे घर बनाना, ईट भट्ठों पर मजदूरी करके गुजर-बसर करते हैं।”[43]

युनुस के पास भी जब तक ज़मीन थी तब उसमें पैदावार बढ़ाने और भी कई तरह की तरकीबों के बारे में सोचता रहता है लेकिन एक ही झटके में उसके सारे सपने चूर-चूर हो गए क्योंकि अब वह किसान से मजदूर बन गया है। उसके पास अब जीविकोपार्जन का सिर्फ एक ही रास्ता है और वह है मजदूरी। उसका पूरा परिवार भीमा बा के यहाँ मजदूरी करता है। उसके गाँव में सड़क निर्माण का कार्य शुरू होने वाला है। युनुस मन ही मन सोचता है कि शायद अब उसे कहीं और से कर्ज लेने की जरुरत न पड़े सड़क परियोजना में मजदूरी करके ही वह कुएं में टोटे लगवाने भर का इंतजाम कर लेगा। मजदूर के सपने कभी

नहीं पूरे होते हैं। युनुस रोज सोचता कि जल्द से जल्द सड़क का काम शुरू हो और वह मजदूरी करने जाये। 'रोजगार गारंटी योजना' के तहत मजदूरों को काम देने का पहल शुरू किया गया है। युनुस सब मजदूरों के साथ मिलकर जॉब कार्ड बनवाता है और इंतजार करता रहता है कि कब सड़क का काम शुरू हो और वह मजदूरी करने जाये। लेकिन हमारे देश की सबसे बड़ी खामी यही है कि यहाँ कोई भी योजनायें ईमानदारी से लागू नहीं की जाती हैं। युनुस सड़क निर्माण कार्य के लिए छः महीने से इंतजार कर रहा है। जब वह जनपद में जाकर पता करता है कि सड़क निर्माण का कार्य कब शुरू होगा तो उसे वहां पता चलता है कि सड़क निर्माण कार्य में जो भी कार्ड धारक हैं सबके नाम पर सौ दिन की हाजिरी लगी हुई है और सबके खाते में सात-सात हजार रुपये भी भेज दिए गए हैं। यह बात सुनकर युनुस समेत जितने भी मजदूर काम के लिए जनपद गए थे सबके पैरों तले की ज़मीन खिसक गई। हमारे यहाँ नीतियों का खामियाजा खेत-मजदूरों को ही भुगतना पड़ता है। एक तो किसी मजदूर को न तो काम मिला न मजदूरी मिली दूसरी बात उन्हें फटकार भी सुननी पड़ी- "तुम जैसे लोगों के कारण ही सरकार ने नगद मज़दूरी बांटना बंद किया है। जब मन करे ऊँचा मुंह करके शिकायत करने पहुँच जाओ। हमको मजदूरी नहीं मिली साब। सरकार ने पक्का इंतजाम किया है। इस बार मजदूरी के चेक तुम्हारे बैंक खाते में जमा हुए हैं। अब कह दो कि सरपंच और बैंक मैनेजर ने मिलके हमारे पैसे निकाल लिए।"[44]

ये तो हैं हमारे देश में सरकारी नीतियों की सच्चाई। सरकार नीतियां चलाती है और सरकारी कर्मचारी उन नीतियों में ही किसानों एवं मजदूरों को फंसा देते हैं। योजनायें तो मजदूरों के लिए चलाई जाती हैं और फायदा उठाते हैं सरकारी कर्मचारी। इसी प्रकार से सरकार की तरफ से गरीब जनता के लिए बी.पी.एल.कार्ड की योजना लेकर आई थी जिसके तहत गरीब जनता को सस्ते मूल्य पर राशन, तेल सरकार उपलब्ध कराएगी किंतु इस योजना का लाभ भी वास्तव में उसके जरूरतमंद तक नहीं पहुंचा। उसका लाभ भी सरकारी पदों पर बैठे लोग उठाते हैं। कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में इस योजना की सच्चाई से रूबरू करवाया गया है। पूरे आदिग्राम गाँव के निवासियों में से सिर्फ 27 लोगों

के नाम पर बी.पी.एल. कार्ड जारी किया गया है। इसका साफ़ मतलब यही है कि गाँव में सिर्फ इतने लोग ही गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। जबकि सच्चाई कुछ और ही है- “यह सच है कि गाँव में हरिजनों, ईसाईयों और मुसलमानों को मिलाकर सात सौ से ज्यादा ही लोग गरीब थे। इनमें उनकी संख्या अधिक थी जिनके पास खेती नहीं थी और जिनका गुज़ारा दूसरे के खेतों या जगदलपुर और रानीरहाट के ईट भट्ठों पर मजदूरी करके चलता था। कुछ नलहाटी बाज़ार में 'भैन' (ठेला-रिक्शा) भी खींचते थे, दुकानों पर काम करते थे। आदिग्राम में भी हाईवे के पास पन्द्रह-बीस दुकानें भी, पान-बीड़ी, सिगरेट के ठेले थे, चाय की गुमटियां थीं। जिन्होंने जैसे-तैसे ड्राइविंग सीख ली थी, वे सिलीगुड़ी, नलहाटी लाइन में ट्रकें चलाते थे। मुंशीग्राम में आइसक्रीम की एक फैक्ट्री थी जहाँ कुछ लोग मजदूरी करने जाते थे। औरतें भी खेतों पर मजदूरी कर लेतीं।”[45]

सरकार जिन लोगों के लिए बी.पी.एल. योजना चलाती है वही इस योजना से वंचित कर दिए गए हैं। क्योंकि हमारे देश में योजनायें तो चलाई जाती हैं किंतु उनमें पारदर्शिता नहीं रहती है। गरीब जनता को पहले तो इन योजनाओं की सच्चाई का पता नहीं चलता और जब उनके सामने सच्चाई आती है तो भी वह कुछ कर नहीं सकती है। आदिग्राम में गरीबों की संख्या 27 से बहुत अधिक है किंतु सरकार एक साथ बी.पी.एल. योजना का लाभ इतने लोगों को नहीं दे सकती इसलिए उसने सिर्फ 27 लोगों के नाम पर ही कार्ड जारी किए हैं। क्योंकि सच में सरकार ने ये योजना गरीबों की गरीबी दूर करने के लिए नहीं चलाई है। उसे तो सिर्फ ये दिखाना है कि वह गरीबों की कितनी बड़ी हितैषी है। बी.पी.एल. कार्ड की सच्चाई को उपन्यास की इन पंक्तियों में बखूबी दिखाया गया है- “बी.पी.एल. कार्ड के बारे में भी सरकार की चालाकी अब गाँव वालों से छिपी नहीं रही। तीन-चार दिन पहले ही रघुनाथ ने एक छोटी-सी जनसभा की थी जिसमें कोई सौ-डेढ़ सौ लोग आये थे। सभा में यह खुलासा किया गया है कि सरकार विकास मद में अपने बजट में कटौती करने के लिए ही एक काल्पनिक रेखा खींच देती है और कहती है कि वह सात सौ लोगों में से सिर्फ सत्ताईस लोगों को ही वह तमाम सुविधाएँ देगी जो एक गरीब का हक है।”[46]

हमारे देश में किसानों एवं खेतिहर मजदूर की समस्याओं पर बातें तो हर कोई करता हैं किंतु उनके हल का कोई उपाय नहीं निकाला जाता है। खेतिहर मजदूर को मजदूरी दिलाने के उद्देश्य से जिस 'रोजगार गारंटी योजना' की शुरुआत की गई उसका कार्यान्वयन ठीक तरह से न हो पाने के कारण खेतिहर मजदूर की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। धीरेन्द्र झा ने अपने लेख 'खेत मजदूर: हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप'- "खेत मजदूरों के सवाल को कुछ कल्याणकारी योजनाओं, रोजगार योजनाओं के जरिए गरीबी उन्मूलन तक सीमित कर देती है। विभिन्न राज्यों की रिपोर्टें दर्शाती हैं कि रोजगार योजनायें अप्रभावी साबित हुई हैं। इसके तहत खर्च की गयी राशि मजदूरों तक शायद ही पहुँच पाती है। आजकल 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून 2005' का काफी जोर-शोर से प्रचार किया जा रहा है। रोजगार देने वाली तमाम योजनाओं को इसमें शामिल कर दिया गया है और कानूनी तौर पर 100 दिन प्रति परिवार रोज़गार की गारंटी की व्यवस्था की गयी है। बिहार में तो गरीबी विरोधी तंत्र व नौकरशाही इतनी मजबूत है कि मजदूरों की यह 'रोज़गार गारंटी योजना' अफसर-ठेकेदार-अभियंताओं की लूट-खसोट योजना बनती नज़र आ रही है। आलम यह है कि रजिस्ट्रेशन जॉब कार्ड के लिए मारामारी हो रही है और प्रशासन सोया हुआ है। दिलचस्प बात यह है कि योजना के शुभारंभ के दिन बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने अपने हाथों से जिन 59 मजदूरों को 'जॉब कार्ड' दिया उन मजदूरों को भी आज तक काम नहीं मिला है।"[47]

सरकार द्वारा गरीब किसानों के लिए समय-समय पर अनेक कामगार योजनायें चलाई जाती हैं। किंतु पर्याप्त जानकारी और उसका सही-सही प्रचार-प्रसार न हो जाने के कारण ये योजनाएं सुचारू रूप से चल नहीं पाती हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस एक जुझारू भूमिहीन किसान है। वह परिस्थितियों के आगे कभी घुटने नहीं टेकता है। उसके सामने एक के बाद एक कई सारी मुसीबतें आती रहती हैं किंतु वह उनसे भरपूर लड़ने की कोशिश करता है। वह अपनी ज़मीन भीमा बा को गिरवी रखकर स्वयं उनके यहाँ मजदूरी करता है। फिर भी वह सरकार की जो भी नीतियां आती हैं उन पर अमल करके अपनी गरीबी को दूर करना चाहता है। युनुस के गाँव में पशु पालन विभाग के अधिकारी आए और

उन्होंने किसानों को उन्नत किस्म के पशु पालने के लंबे-लंबे भाषण सुनाए। भाषण का केंद्र बिंदु था एचएफ प्रजाति की गाय। जो हर दिन चौबीस लीटर दूध देती है। युनुस के सामने अपनी गरीबी और क़र्ज़ की समस्या हल करने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है। वह जैसे-तैसे करके पंद्रह हज़ार रुपये की व्यवस्था करके पशुपालन विभाग वालों के पास पहुँच गया। गाय आने तक तो युनुस की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था। किंतु जैसे ही गाय ने बछड़े को जन्म दिया युनुस की सारी ख़ुशी लुट गई क्योंकि वह बछड़ा खेती-किसानी के किसी काम का नहीं था। युनुस अपनी समस्या को लेकर पशु-पालन विभाग पहुँच जाता है- "युनुस ने कन्नोद पहुँचकर यह बात पशु-पालन विभाग के साहब को बताई तो वह बहुत देर तक खों-खों कर हसतें रहे फिर उन्होंने बताया कि एचएफ के बछड़े को खंदुर नहीं होता है। वह किसानी के काम का नहीं है।"[48]

युनुस को गाय खरीदने से पहले उसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी और न ही पशुपालन विभाग के लोगों ने उसे ऐसी जानकारी दी थी। दरअसल युनुस ने जो गाय पाल रखी थी वह जर्सी प्रजाति की थी। वह मालवा के गर्म मौसम के लिए अनुकूल नहीं थी। उसका दूध भी बहुत पतला होता है। उस दूध के खरीददार भी नहीं मिलते। युनुस ने जिस उद्देश्य से गाय को ख़रीदा था उसका कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हुआ उल्टा उसे बारह हज़ार घाटे का सौदा करके 4 हज़ार रुपये में गाय बेचनी पड़ी। उसे कोई लाभ तो नहीं मिला हाँ कर्ज का बोझ और भी अधिक चढ़ गया। सरकार दुग्ध व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए इस तरह की योजनायें चलाती रहती है किंतु वह इसके लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं उपलब्ध करवा पाती है। रघबीर सिंह के अनुसार- "1970 के बाद कृषि विरोधी और उद्योग के हित में नीतियाँ अपनाकर सब कुछ उलटा-पुल्टा कर दिया। लघु कृषि के संरक्षण का मुद्दा तो एजेंडे से सिरे से ही ख़ारिज कर दिया गया। इसके अलावा कृषि उत्पाद को बढ़ा देने वाले बीज और पशु नस्ल सुधार की योजनाओं को देश की अवस्था के अनुसार ढाल कर लागू करने के बजाय ऊपरी तौर पर लागू कर दिया गया।"[49]

दुग्ध व्यवसाय और पशु नस्ल सुधार के लिए सरकार द्वारा लाई गई इस योजना को देश में कई प्रदेशों में लागू किया गया किंतु कहीं से भी इसके सफल होने की सूचना नहीं सुनाई पड़ती है। सिर्फ इससे किसानों की समस्याएं बढ़ने की ही घटना सुनाई देती हैं। कहीं-कहीं तो इन योजनाओं से जुड़े हर व्यक्ति और अधिकारी भी अपने कर्त्तव्य को लेकर समर्पित थे। फिर भी यह योजना सफल नहीं सिद्ध हुई।

पशुपालन योजना की यही नीति संजीव के 'फ़ांस' उपन्यास में भी दिखाई पड़ती है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा वर्ष विदर्भ के किसानों को दुधारू गाय देने की योजना चलाई गई। जिसमें किसानों को नौ हज़ार रुपये देना पड़ता है बाकी का खर्च सरकार वहन करेगी। सरकारी कर्मचारियों के मुख से ऐसी गाय की चर्चा सुनकर सभी किसान लालायित हो गए। वे किसी भी कीमत पर गाय को खरीद लेना चाहते थे। तुकाराम को गाय मिली तो वह फूले नहीं समाया। वह अपने पास गाय को देखकर सोचता कि जिनको योजना के तहत गाय नहीं मिली उसे तुकाराम से रंज होता होगा। तुकाराम को गाय के चारे से लेकर दूध तक किसी बारे में भी जानकारी नहीं थी। उसे बाद में पता चलता है कि इन गायों को खिलाने के लिए हरे चारे की आवश्यकता होगी। यह तो विदर्भ की धरती का दुर्भाग्य ही है कि सूखी धरती पर हरा चारा कहाँ से उत्पन्न कर पाएंगे। किसी तरह से कोई चारे का इंतजाम भी कर दे तो गाय के दूध का कोई खरीदार ही नहीं मिल रहा है- "दूध लेकर तुकाराम कहाँ-कहाँ नहीं भटका ! रेट काफी कम। लेकिन दूध का कोई खरीदार नहीं। या शायद ये नए दुग्ध विक्रेता थे जिन्हें बाजार के तौर तरीके नहीं मालूम। कमोवेश यही हाल बाकी मनमोहिनी गायों का था। जिस दूध के लिए कभी बच्चे तरसते थे कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि दूध में डुबकी लगाने के भी दिन आयेंगे। लेकिन डुबकी भी ऐसी लगी कि दम फूलने लगा। गाय न हुई, जी का जंजाल हो गयी। इतने दूध का क्या करें ? कोई लेता-देता तो है नहीं, खपाये कहाँ। फिर खिलाएं कैसे, पैसा तो निकलता नहीं।"[50]

योजना तो किसानों के हित में ही थी लेकिन इसका स्थानीय स्तर पर नियोजन गलत हुआ। जहाँ पर फसल के लिए पानी उपलब्ध नहीं है, पहले से ही किसान कर्ज में डूबे हुए हैं। दूध के ग्राहक न उपलब्ध

हों वहां पर ऐसी गाय पालना मुसीबत की ही बात है। वैसे भी देशी धरती पर विदेशी गाय पालना कोई सरल कार्य नहीं है। विदेशी गाय के लिए विदेशी चारा और विदेशी जलवायु किसान कहाँ से उपलब्ध करा पायेगा। अंत में गरीब किसानों ने घाटे का सौदा कर गायों को बेंच दिया- "कितनो को धन्य कर दिया गो माता ने। पहले तो खरीदारों को हरियाणा से 10-15 हज़ार की गाय का पच्चीस हज़ार दिखाया, दस हज़ार वहीं। फिर खिलाने-पिलाने से लेकर रख-रखाव तक जहाँ भी स्कोप मिला, कोई कोर-कसर नहीं छोड़ा भाई लोगों ने। महीने भर में ही शिकारी सेठों ने सूंघ लिया, ये आदिवासी और दूसरे दरिद्र गाय को संभाल नहीं पा रहे हैं, मुक्त होना चाहते हैं, 30 हज़ार की गाय मोल-तोल कर चार पांच हज़ार में खरीद लाये। निर्धन किसानों की गायें सेठों के खूँटे बंध गयी।"[51]

सरकार द्वारा किसानों के लिए चलाई गई पशुपालन योजना तो उनकी गरीबी दूर करने के लिए चलाई गई थी, किंतु इस योजना ने उन्हें और भी कर्ज के दलदल में ढकेल दिया। सरकार द्वारा चलाई गई पशुपालन योजना देश के कई राज्यों के किसानों को गरीबी से निजात दिलाने के लिए लागू की गई। ऐसी ही योजना 'उड़ीसा' के 'नवापण' में लागू की गई। जिसका उद्देश्य था कि गरीब किसानों को दुग्ध एवं पशुओं की नई नस्ल विकसित किया जायेगा। सरकार की यह योजना 'भारतीय एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन' के तहत कार्य कर रही थी। इस योजना से जुड़े लाभार्थी एवं अधिकारी अपने पूरे जी-जान से लगे रहे। योजना के तहत गाय पालने वाले लाभार्थी को सरकार की तरफ से एक-एकड़ भूमि भी उपलब्ध कराई गई जिससे उस पर वे गाय के लिए चारे का इंतजाम कर सकें। लाख कोशिशों के बाद यह योजना भी विफल ही रही। पी.साईनाथ के अनुसार- "यह परियोजना भी उन अनेक परियोजनाओं में से एक थी जिससे इस इलाके का विनाश हुआ। जिनको 'लक्ष्य' के रूप में चिह्नित किया गया उनसे किसी भी तरह का सलाह-मशविरा नहीं किया गया। यहाँ दुग्ध परियोजना की कोई मांग ही नहीं थी। अधिकारियों को यह महसूस नहीं हो सका कि लोगों की दिलचस्पी सुबाबुल के पेड़ों में नहीं बल्कि रोज़गार पाने में थी। फिर भी इस तरह की गलतियाँ बार-बार की जाती हैं।"[52]

सरकार ने गरीबों को अस्पताल में मुफ्त चिकित्सा देने की योजना चला रखी है, जिससे किसी गरीब की मृत्यु दवा के अभाव के चलते न हो। किंतु उस कूपन का लाभ भी गरीबों को समय पर नहीं मिल पाता है। वह मुक्त चिकित्सा का कार्ड बनवाने के लिए दफ्तरों के चक्कर लगाते रहते हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में रुक्मणि अपने पिता का ऑपरेशन करवाना चाहती है जिसके लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। वह अपने भाई से लाख मिन्नतें करती है कि वह ताउजी का इलाज करवा दे लेकिन उसका भाई तैयार नहीं होता है। बाद में वह अपने पिता के ऑपरेशन का पैसा कानूनी दांव पेंच खेलकर खुद हासिल कर लेता है और पिता को उसकी हाल में मरने के लिए छोड़ देता है। रुक्मणि कानून की ऐसी व्यवस्था देखकर दंग रह गई। उसके सामने उसके भाई के बारे में तरह-तरह की बातें होती रहती हैं। लोग कानून व्यवस्था के बारे में बातें करते हुए कहते हैं- "यही धांधली पीला कूपन में भी चल रही है। जिनका बनना चाहिए वी विचारा तो सचिव का आगे-पीछे घूम-घूम के थक जाए पर उनका कूपन नी बने और कित्ता ही ऐसा है जिनकी बड़ी-बड़ी जोत है, हवेलियां बंधी है, दरवज्जे ट्रेक्टर खड़ियो है, उनका पीला कूपन बनेल है।"[53]

भारत में तो स्वास्थ्य पर वैसे ही सरकार के पास बहुत कम बजट होता है दूसरा गरीबों के लिए तो उसकी योजनाएं सिर्फ कागजों तक सीमित होती है। असल में तो उन योजनाओं का फायदा समाज का धनी वर्ग ही उठाता है क्योंकि दफ्तरों में इन्हीं की सुनवाई होती है। सरकार तो वैसे भी सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं पर कटौती ही करती रहती है। इस वजह से गरीबों की चिंता और बढ़ जाती है क्योंकि निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं का वहन करना उनकी क्षमता के बाहर की बात होती है। स्वास्थ्य सेवाओं में कटौती करके सरकार परोक्ष रूप से निजी क्षेत्र की सेवाओं को बढ़ावा दे रही है और गरीबों को मौत के दलदल में ढकेल रही है। पी.साईनाथ के अनुसार- "1992 -1993 के बजट में केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए निर्धारित कोष में लगभग 43 प्रतिशत की कटौती की। इसी बजट में आबादी के सबसे ऊपरी हिस्से के 10 प्रतिशत लोगों को करों में लगभग 4800 करोड़ रुपये की रियायत

दी गई। इसके फलस्वरूप अन्य स्वास्थ्य कार्यक्रमों को भी मार सहनी पड़ी। इसे आप 'ट्रिकिल डाउन थ्योरी' कह सकते हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि गरीबों से लो, संपन्न लोगो को दो और इसके बाद साँस रोक कर देखते रहो कि इसका कितना हिस्सा टपकते हुए गरीबों तक पहुँचता है।"[54]

सरकार जब अपनी नीतियों का प्रचार करती है तो उसमें वह सिर्फ उसकी अच्छाइयों को ही दिखाती है। उसके कमजोर पक्ष का प्रचार नहीं करती है। 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस सरकार की नीतियों पर चलकर अपने को क़र्ज़ मुक्त करना चाहता है लेकिन वह जितनी बार नए हथकंडे अपनाता है उतनी बार उसमें फेल हो जाता है। अबकी बार वह मुर्गी पालन का व्यवसाय करता है। मुर्गी पालन विभाग के अफसरों ने किसानों को इस योजना के बारे में बताया कि सिर्फ पांच सौ रूपए में सौ चूजे और दाने सरकार की तरफ से दिए जायेंगे। साथ ही उन्होंने वहां मौजूद लोगों को लाभ का ऐसा पाठ पढ़ाया कि उन्हें सच में ऐसा लगने लगा कि सरकार हम गरीबों को गरीबी के दलदल से बाहर निकालना चाहती है। युनुस अपने को सरकार का कृपापात्र मानकर पांच सौ रूपए में चूजों को खरीद लेता है। चूंकि युनुस ने जब से अपनी ज़मीन गिरवी रख रखी है तब से वह अपनी जमीन को छुड़ाने के लिए सौ तरकीबें सोचता रहता है उसे भीमा बा से छुड़ाने के लिए। इसीलिए वह मुर्गीपालन का व्यवसाय अपनाना चाहता है। उसे यह चिंता हमेशा सताती रहती है कि वह किसान से मजदूर बन गया है। इसलिए वह मुर्गीपालन व्यवसाय का सहारा ले रहा है। मुर्गियों को खरीदने के बाद उसका परिवार सौ तरह के सपने संजोना शुरू कर देते हैं। लेकिन एक मजदूर की खुशी की उम्र ज्यादा लंबी नहीं होती है। युनुस की खुशियाँ और उसकी उम्मीदें भी जल्द ही समाप्त होने को हैं। युनुस ने मुर्गीपालन विभाग वालों से मुर्गियां तो खरीद लीं, लेकिन उन्होंने युनुस को मुर्गियों को पालने और उनके रख-रखाव के बारे में कोई जानकारी नहीं दी। युनुस भी इस धंधे में नया था। उसे यह तक नहीं पता था कि मुर्गियों को रखे कहाँ और उन्हें खिलाए क्या। उसकी पत्नी यास्मिन ने सारे चूजों को लकड़ी के पिंजरे में रख दिया। मुर्गियों को खिलाने का चारा तक उनके पास नहीं था। सुबह होते-होते सारे चूजे मर गए। मुर्गीपालन विभाग वाले चारा लेकर भी तब आये जब सारी मुर्गियां

मर चुकी थीं- “उका दो दिन बाद संझा घड़ी एक आदमी सरकारी जीप में से पच्चीस-पच्चीस किलो की दो बोरी उतार के ओसारा में धरने लगियो। मैंने पूछी भय्या इसे कई है ? उ बोलियो तुम्हारी मुर्गियों के लिए दाना है। मैंने कहा तमारे पेलां दाना लाना था और फिर मुर्गी। तमने तो उलटो करियो। उ केहन लगियो भय्या हम क्या करें। अफसर ने कहा मुर्गियां पहुँचाओ, हम मुर्गियां ले आये। आज कहा दाना ले जाओ, हम दाना ले आये। अब हमारी क्या गलती ? मैंने भी सोची, सही बात है। यो तो अपना जैसो नौकर आदमी है। ईकी बिचारा की कई गलती। मैंने उके पानी-वानी पिलायो।”[55]

सरकार की योजनायें सिर्फ कागजों तक ही रहती हैं। गरीब किसान एवं खेतिहर मजदूरों को आवास देने के लिए आवास योजना के तहत वह गरीबों को आवास राशि देती है। राशि के नाम पर भीख स्वरुप 300 रूपए। 300 रूपए में कौन सा आवास निर्माण होता सकता है ? यह बात सिर्फ हमारी सरकारें ही बता सकती हैं। लेकिन सरकारें तो अपने चेहरे पर किसानों और खेतिहर मजदूरों के सच्चे हिमायती होने का मुखौटा लगाए रहती है जिससे उनकी पहचान जनता को न हो सके। संजीव के 'फांस' उपन्यास में देशपांडे ने लोगों को सरकारी योजनाओं की सच्चाई से रूबरू कराया- “मै भंडारा जिले की हकीक़त बता रहा हूँ-जिस सरकार से आपने आत्महत्या करने का परमिशन माँगा है, उसी के अधिकारी हवाई जहाज से ऊपर ही मुआयना कर नाप गये-कितना पानी। 300 रू. अनुदान मिले हैं मकान बनाने को। खुद के टॉयलेट तक के लिए लाखों और शेतकरी को पूरे मकान के लिए 300 ! चूहे की बिल भी न बने ! वाह रे तुम्हारा शेतकरी प्रेम ! कितनी मेहरबान है सरकार। भर दिया दामन वादों से ! वादे ! वादे ! वादे ! ।”[56]

इसी तरह से किसानों को सरकार की तरफ से जो अनुदान राशि या मजदूरों को मजदूरी आदि दी जाती है वह उन तक पहुँच ही नहीं पाती। क्योंकि सूची में जिन किसानों के नाम दिए जाते हैं असल में वे सब फर्जी होते हैं। और नाबार्ड जैसी संस्था या सरकारें बिना कोई जांच पड़ताल किए सीधे बैंकों को पैसा भेज देती हैं। बाद में पता चलता है कि पैसे जिनको दिए गए हैं असल में वो कोई किसान हैं ही नहीं। और असल किसान जिनके लिए ये राशि दी गयी है वो राशि उन तक तो पहुंची ही नहीं। यही हाल सरकार

द्वारा चलाई गई बाकी योजनाओं का भी होता है। अनुराग मौर्य के अनुसार- "बीमा, ऋण माफ़ी, पेंशन, बचत आदि में पास होने वाली प्रस्तावित राशियाँ भी किसानों तक पहुँचने के बजाय कृषि दलालों, बाजारियों या सरकारी दफ्तरों में ही आपस में बाँट ली जाती हैं। या फिर सरकार संस्थागत तरीके से अपने चहेतों तक पहुंचा देती है।"[57] सरकार ने किसानों को खाद, पानी, बिजली पर सब्सिडी की व्यवस्था बना रखी है ताकि किसानों पर लागत का बोझ कम पड़े। किंतु उन्हें यह सब्सिडी न मिलकर पूंजीपति ही इसका लाभ कमाते हैं। इसी तरह की समस्या से एम.एम.चंद्रा का उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' भी हमें रूबरू करवाता है- "ये सरकार, वो सरकार पूंजीपतियों की सरकार है। यह किसानों को सब्सिडी तो देती है, लेकिन वह किसानों को नहीं मिलती, बल्कि सीधे पूंजीपतियों के खातों में चली जाती है। हम किसान इस भुलावे में आ गए हैं कि ये सरकारें हमारे लिए काम कर रही है। इसके लिए हम जिम्मेदार हैं।"[58]

जब से भारत सरकार ने डब्लयू. टी. ओ. से समझौता किया तब से भारत में नई आर्थिक नीति लागू हुई है। इसे दूसरे शब्दों में हम निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण भी कह सकते हैं। अब कृषि उत्पादन से लेकर फसल मूल्य तक किसान तय नहीं कर सकता है। यह काम भी बाज़ार कर रहा है। खेती-किसानी आज बाज़ार के हवाले कर दी गई है। इसलिए आज किसानों की दशा इतनी दयनीय हो गई है। किसान हो या खेतिहर मजदूर दोनों के लिए सरकार समय-समय पर नीतियाँ बनाती रहती है। यह अलग की बात है कि ये नीतियाँ कभी कारगर नहीं होती हैं। किसानों के पास अपनी भूमि होती है इसलिए सरकार उनके लिए उत्पादन बढ़ाने से लेकर कम लागत में कृषि हो सके ऐसी नीतियाँ बनाती हैं। इसी प्रकार खेतिहर मजदूरों को मजदूरी के लिए संसाधन उपलब्ध कराने संबंधित योजनायें चलाई जाती हैं।

5.3 उपन्यासों में अभिव्यक्त विस्थापन और पलायन की समस्या

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों और खेतिहर मजदूरों की अनेक समस्याओं में से एक विस्थापन और पलायन की समस्या है। ये समस्याएं इतनी बड़ी होती है कि इनका दर्द सिर्फ वही किसान और मजदूर समझ सकते हैं जिन्होंने अपने घर और गाँव को छोड़ने का दर्द झेला हो। 1947 के

बंटवारे ने लोगों को अपने घर और देश को छोड़कर जाने को मजबूर कर दिया था तब से आज तक विस्थापन और पलायन की समस्या ने लोगों का दामन नहीं छोड़ा है। हर साल बड़ी संख्या में किसानों और खेतिहर मजदूरों को अपने घर से बेघर होना पड़ता है। जब किसी व्यक्ति की ज़मीन या घर को विकास आदि कार्यों के लिए सरकारी योजनाओं के तहत अधिग्रहित कर लिया जाता है तो उसे विस्थापन कहते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया जाने लगा। विकास आदि कार्यों के लिए सड़क, रेलमार्ग, बांध, पॉवर प्रोजेक्ट आदि की स्थापना के लिए किसानों की ज़मीनें अधिग्रहित की जाने लगी। बड़े-बड़े उद्योगपतियों के फैक्ट्रियों को स्थापित करने के लिए किसानों की हजारों-हजारों एकड़ ज़मीन सरकार द्वारा अधिग्रहित कर ली जाती हैं। क्योंकि कॉरपोरेट जगत की फैक्ट्रियों के लिए भी ज़मीनें हमारे देश की सरकारों के जिम्मे से ही हड़पी जाती हैं। इस सन्दर्भ में 'जन संघर्ष समन्वय समिति का विचार' है- "1991 और 1995 के बाद से कानूनों में जो बदलाव किया गया है उसके चलते विभिन्न परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में ज़मीन अधिग्रहित करने के रास्ते खुल गए। इसकी शुरुआत 'स्पेशल इकनोमिक जोन' (सेज) के नाम से हुई। देश का कोई भी बड़ा उद्योगपति घराना ऐसा नहीं है जिसे सेज के नाम पर किसानों की हजारों-हजारों एकड़ उपजाऊ ज़मीन, अधिग्रहित करके न दे दी गई हो। किसी-किसी प्रान्त में पूरा का पूरा जिला और ब्लाक ही सेज के नाम घोषित कर दिया गया है। उस जिले या ब्लाक में कोई भी उद्योगपति जहाँ भी ऊँगली उठा देगा कि अमुक ज़मीन हमें चाहिए, वह उसे अधिग्रहित कर के दे दी जाएगी।"[59]

हमारे देश में कभी राष्ट्रीय राजमार्गों को चौड़ा करने के लिए तो कभी किसी कॉरपोरेट जगत की बड़ी परियोजनाओं के लिए ज़मीन अधिग्रहण का कानून सरकार द्वारा लाया जाता है। कभी छह-लेन तो कभी आठ-लेन सड़कें बनाने के लिए किसानों की ज़मीनें अधिग्रहित की जाती है। इन परियोजनाओं की शुरुआत सरकारी और निजी कंपनियों की भागेदारी में की जाती है और सरकार का काम ज़बरन भूमि को अधिग्रहित कर कंपनियों को सौंपना होता है। कितना दर्द भरा जीवन किसानों और मजदूरों का होता है

जिन्हें सरकार की इन विकास की योजनाओं के चलते अपनी ज़मीन और घर से बेदखल होना पड़ता है। ये लोग अपनी आजीविका से वंचित होकर बदहाली का जीवन जीने को मजबूर होते है। जहाँ इन्हें भरपेट भोजन तक नहीं नसीब होता है। ऐसे लोग बीमारी तथा बेरोजगारी और भी अन्य कई समस्याओं से ग्रसित जीवन जीते हैं। यह सब सिर्फ विकास की मार झेलने वाले किसानों और खेतिहर मजदूरों को सहना पड़ता है। और उन्हें यह बताया जाता है कि ये सब उनकी प्रगति के लिए किया जा रहा है। पी.साईनाथ के शब्दों में- "1951-90 के दौरान दो करोड़ सोलह लाख लोगों को इन्हीं स्थितियों का सामना करना पड़ा और ऐसा केवल बांधो और नहरों के कारण हुआ। इसमें अगर खदानों के सिलसिले में हुए विस्थापन के शिकार 21 लाख लोगों को और जोड़ दिया जाये तो यह समूची आबादी कनाडा की आबादी के बराबर हो जाएगी। उद्योगों, ताप बिजली घरों, वन्य जीवों के लिए संरक्षित प्रदेशों और रक्षा प्रतिष्ठानों के कारण कम से कम बीस लाख चालीस हज़ार लोगों को अपने घरों से बेदखल होना पड़ा। इन सबको जोड़ें तो पता चलता है कि लगभग दो करोड़ साठ लाख भारतीयों को विकास की मार झेलनी पड़ी।"[60]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास की मूल समस्या ही किसानों और खेतिहर मजदूरों को उनकी ज़मीन हड़प कर बेदखल करने की है। आदिग्राम के किसानों को कंपनी के नुमाइंदे अपनी तरफ से बहला फुसला कर उनकी ज़मीनें हड़पने में लगे हुए हैं। भोल-भाले किसानों को तो यह तक नहीं पता है कि उनकी ज़मीनें आखिर हड़पी क्यों जा रही हैं। कंपनी को तो सिर्फ किसानों की ज़मीनें चाहिए उन्हें उनके सुख-दुःख एवं समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। कंपनी के नुमाइंदों को किसी भी तरह से किसानों की अधिक से अधिक ज़मीन पर कब्ज़ा करके अपने आपको काबिल सिद्ध करना है। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि किसान बेघर होते हैं या विस्थापित होते हैं- "शाबाश ! तुम्हें पता भी है कि तुम्हें जिस एरिया को आइडेंटीफाई करना है, वह है कितना ? दो हफ्तों में दो किसानों से बातें हुई तुम्हारी। हमें उन्नीस हज़ार एकड़ चाहिए, दो बिस्वा नहीं। यू शुड बी फास्ट, यू नो ?...... तो एक तरफ तो बढ़ा-चढ़ाकर कंपनी को लिखो और दूसरी तरफ दिन-रात लोगों को मोबिलाइज करने में लग जाओ, समझे ? ...... और

हाँ याद रखो, अपने आपको किसी भी तरह के कमिटमेंट से बचा के रखना है तुम्हें। फिलहाल स्टेट गवर्नमेंट की तरफ से ऐसा कोई निर्देश नहीं मिला है हमें ! या हद से हद यह वर्वल आश्वासन दे सकते हो कि केमिकल हब के बैठने के बाद उन्हें कॉन्ट्रैक्ट बेसिस पर मजदूरी दी जाएगी।"[61]

जब भी सरकार को किसानों की ज़मीन हड़पनी होती है तो सरकार की तरफ से उन्हें तरह-तरह के लालच दिए जाते हैं। आज भी हमारे देश का किसान न तो इतना पढ़ा-लिखा है और न ही जागरूक कि वह सरकार की इन सारी बातों की सच्चाई को समझ पाए। इसलिए सरकार और कंपनियों की तरफ से उन्हें कभी नौकरी तो कभी किसी सुरक्षित स्थान पर बसाने के वादे किए जातें हैं किंतु ये वादे पूरे नहीं किए जाते हैं। एक बार योजना शुरू होने के लिए ज़मीनें अधिग्रहित करने के बाद इन किसानों और मजदूरों को कोई पूछता भी नहीं है। फिर भी भोले-भाले किसानों और मजदूरों को तो ऐसा ही लगता है कि ये सारे कार्य सचमुच विकास के लिए है, और इनके माध्यम से उन्हें भी अच्छा जीवन जीने का अवसर दिया जा रहा है। ये वादे होते ही इतने मज़बूत हैं कि कोई भी सीधा-साधा इंसान इसमें फंस जाय। इसी तरह से कंपनी के नुमाइंदों द्वारा आदिग्राम वासियों को भी झूठे वादों के झांसे में फंसाया जा रहा है- "आदिग्राम में जब कारखाना लगेगा तो इलाके का सर्वांगीण विकास होगा। आज की तारीख में एक-एक बिस्वे में एक घर के चार-चार लोग खेती करते हैं। नतीजा ? दो जून का भात भी ठीक से नसीब नहीं होता। फटा-चीथड़ा पहनते हैं। बात-बात पर झगड़ा सिर फुटौव्वल करते हैं। जब कारखाने में नौकरी लगेगी तो सबका दुःख-दलिद्दर दूर होगा। हर महीने सात तारीख को वेतन मिलेगा ही मिलेगा। न सूखे-बरसात की फिकिर, न फसल को कीड़ा-पाला लगने का डर। मैं कहता हूँ कि एक बार जब कारखाना बैठ जाएगा तो फिर आप देखेंगे कि यह आदिग्राम, अपना पुराना आदिग्राम नहीं रह जायेगा।"[62]

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में कासीनाथ भी गाँव के लोगों को तरह-तरह के लालच देता है। किसी तरह से गाँव के किसान उसकी बातों के बहकावे में आ जाएं और वह उनकी जमीन पर कब्जा करके उन्हें गाँव से बाहर ढकेल दे। वह लोगों से कहता है कि सीमेंट की फैक्ट्री खुलने से गाँव के

लोगों को चार पैसे का रोजगार मिलेगा उन्हें मजदूरी के लिए दर-बदर भटकना नहीं पड़ेगा। गाँव में स्कूल खुलने से गाँव के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा अच्छी हो जाएगी। कासीनाथ के लाख लालच देने के बावजूद गाँव के किसान अपनी जमीन कंपनी को देने को राजी नहीं है। तब गाँव वासियों को कासीनाथ के आदमियों ने धमकाना शुरू कर दिया। वह गाँव के लोगों को यह बताता है कि शासन सत्ता की शक्ति कितनी बड़ी होती है- "ये जो सर्वे टीम आई है इधर आज उसका मतलब येई है कि अगर बंटाईदारों ने अपनी मनमर्जी से जमीन न बेची तो कासीनाथ ज़बरजस्ती सरकार से इस पर कब्ज़ा करवा लेगा। कब्जा करने का कानून बना देगा। उसके हाथ में कानून बनाने की पावर जनता ने उसको दी है। ये सर्वा टीम आखिरी बार हमको समझाने को आई है। कानून बनाके सारे बंटाईदारों को उनकी ज़मीन की कीमत सरकार दे देगी। सरकार कोई बी ज़मीन अपने कब्ज़े में ले सकती है।"[63]

सरकार अपने अधिकार के तहत किसानों और मजदूरों की ज़मीन पर जबरन कब्ज़ा कर सकती है और उन्हें बेघर कर सकती है। सरकार की तरफ से भूमि अधिग्रहण या अन्य किसी भी कारण से विस्थापित किसानों और मजदूरों के जो आंकड़े जारी किए जाते हैं वो भी सही नहीं होते हैं। सच्चाई तो यह है कि जिन परियोजनाओं के तहत किसानों और मजदूरों को विस्थापित होना पड़ता है, उनकी मांग तो कभी किसान और मजदूर करते ही नहीं। वे तो सिर्फ अपनी ज़मीन से जुड़े रहना चाहते हैं। इन परियोजनाओं के लिए विस्थापित लोगों की सही जानकारी भी सरकार के पास नहीं होती है। कई तो ऐसी परियोजनाएं भी सरकारी नीति के तहत आती हैं जिनकी जानकारी असल में आम जनता को होती ही नहीं है तो उस परियोजना के तहत विस्थापित आंकड़े कहाँ से मिलेंगे। ज़मीन अधिग्रहण के तहत विस्थापित उन्हीं लोगों के आंकड़े और नाम सरकार द्वारा जारी किए जाते हैं, जो इसका प्रत्यक्ष रूप से शिकार होते हैं। किसान जिनके नाम पर ज़मीनें होती हैं, उनके नाम तो विस्थापित आंकड़ों में दर्ज किए जाते हैं। किंतु खेतिहर मजदूर जिनके नाम पर अपनी कोई ज़मीन दर्ज नहीं होती हैं, वो विस्थापित तो होते हैं लेकिन सरकार द्वारा इनकी कोई सूची जारी नहीं की जाती है। विस्थापन का दर्द किसानों के साथ-साथ खेतिहर मजदूर भी

सहता है किंतु उनके दर्द को कहीं भी कोई जगह नहीं मिलती है। उसे मजदूरी करने के लिए भी जिन यातनाओं का सामना करना पड़ता है उसका कोई हिसाब हमारी सरकार के पास नहीं होता है। क्योंकि विस्थापित होने के पश्चात मजदूरी करने के लिए भी उन्हें दर-बदर भटकना पड़ता है। अपनी जर-जमीन से दूर रहकर उन्हें मजदूरी करने के लिए भी बहुत सी कठिनाईयां झेलनी पड़ती हैं। पी.साईनाथ के अनुसार- "दूसरे शब्दों में कहें तो इन आंकड़ों में उन लोगों को शामिल नहीं किया गया है जो विस्थापन से प्रभावित तो हुए हैं लेकिन जिनके पास अपनी कोई जमीन नहीं थी। पुनर्वास योजनाओं के अंतर्गत भूमिहीन मजदूर, मछुआरे और शिल्पी नहीं आते हैं। विकास की इस दृष्टि के कारण डूब वाले क्षेत्रों अथवा परियोजना क्षेत्रों से बाहर पड़े लाखों लोग उपेक्षित रह जाते हैं। यह ऐसे लोग हैं जिनके जीवन को सहारा देने वाली व्यवस्था को इन परियोजनाओं ने तहस-नहस कर दिया है। उन परिवारों का भी इसमें ज़िक्र नहीं होता जो कैचमेंट एरिया के कारण प्रभावित हैं। इस दायरे में वे परिवार भी नहीं आते जिन्हें वृक्षारोपण कार्यक्रमों के तहत अपनी जमीन खोनी पड़ी है।"[64]

हमारे समाज में प्रगति के कार्यों के अतिरिक्त और भी अनेक कारणों से किसानों और खेतिहर मजदूरों को विस्थापित होना पड़ता है। विस्थापन की मार सबसे ज्यादा महिलाओं पर पड़ती है। क्योंकि ये भले ही खेती-किसानी से जुड़ी होती हैं किंतु इनके नाम जमीनें नहीं होती हैं। इस कारण भूमि अधिग्रहण के पश्चात जो मुआवजों की राशि दी जाती है या पुनर्वास के लिए जो जमीनें दी जाती हैं उनसे महिलायें वंचित रह जाती हैं। पी.साईनाथ के शब्दों में कहा जाय तो- "विस्थापन का जो मुआवजा दिया जाता है वह आमतौर पर नकद धनराशि अथवा जमीन के रूप में होता है। प्राय: इन दोनों पर महिलाओं का नियंत्रण नहीं रहता। खासतौर से नकद राशि पर तो इनका सचमुच कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसका असर बच्चों पर पड़ता है क्योंकि पैसे खर्च करने के मामले में जहाँ महिलायें निर्णय लेने की स्थिति में होती हैं वहां बच्चों की देखभाल बेहतर ढंग से हो पाती है। लेकिन जो हमारा मौजूदा ढांचा है उसमें इस तरह के संसाधनों पर महिलाओं के स्वतंत्र अधिकारों को कोई मान्यता नहीं दी गयी है।"[65]

जैसा कि हम यह बात जानते हैं कि जब भी किसानों और खेतिहर मजदूरों को जबरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसाने के लिए जमीनें दी जाती हैं तो वे सिर्फ अपने मूल स्थान से ही नहीं वंचित होते हैं। वरन उनका घर, खेत-खलिहान, चारागाह, उनका समुदाय आदि से भी उन्हें वंचित होना पड़ता है। लेकिन इन सब समस्याओं और उनकी भावनाओं से खिलवाड़ करने का कोई मुआवजा उन्हें सरकार नहीं देती है। ये मुआवजा और पुनर्वास सिर्फ सरकारों की तरकीबें हैं जिनके माध्यम से वे किसानों और खेतिहर मजदूरों को बेघर बनाते हैं।

जिस तरह से विस्थापन में किसानों और खेतिहर मजदूरों को जबरजस्ती उनके घर और जमीन से बेदखल कर दिया जाता है उसी तरह से पलायन में उनकी खुद की मजबूरियां उन्हें अपनी जमीन और घर से दूर जाने पर मजबूर कर देती है। 'पलायन' उसे कहते हैं जब व्यक्ति किसी भी कारणवश अपने निवास स्थान को छोड़कर अन्य स्थान पर चला जाता है। आजादी के बाद हमारे देश में उद्योग-धंधों को मजबूत बनाया गया जिससे लोगों के मन में यह धारणा बनी कि उन्हें अपने प्रगति के लिए इन उद्योग-धंधों से जुड़ना चाहिए। जिससे उनका भी जीवन सुखमय हो सके। साथ ही जब गाँव में किसानों को अपनी खेती में पर्याप्त मुनाफा नहीं मिल पाता है तब भी वे मजबूर होकर शहर की तरफ पलायन करते हैं। शिवाजी राय के अनुसार- "आजादी के बाद देश में बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना हुई, तब तक इस इलाके में भी यह धारणा मजबूत हो चुकी थी कि सिर्फ खेती किसानी से काम नहीं चलेगा। रोजगार के कामों को बढ़ाने के लिए बड़े उद्योग कायम करना जरूरी है। लेकिन उस बदले परिवेश में भी इन क्षेत्रों में न तो नए उद्योग स्थापित हुए और न ही इस विशाल भू भाग के संरचनात्मक विकास पर कोई ध्यान दिया गया। बेहद धनी आबादी वाले इस इलाके के लोगों को घर बार छोड़कर देश के सुदूर इलाके और विदेशों में भी भाग कर के जाने को विवश किया गया।"[66]

हमारे देश में सत्ता के रखवाले आजादी के बाद से ही खेती को आत्मनिर्भर बनाने के बदले पूंजीपतियों और उनके सहयोगियों को फायदा पहुँचाने में लगे रहे। इसी प्रयास के तहत 'हरित क्रांति' की

शुरुआत की गई जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीजों, खादों और कीटनाशक दवाओं के साथ ही खेती में मशीनों के प्रयोग पर बल दिया गया। खेती में धीरे-धीरे श्रम शक्ति और पशुओं की जरूरतें कम होती गई। खेती के लागत में भारी वृद्धि हुई। सिंचाई, बिजली, डीजल आदि के दामों में बेतहाशा वृद्धि होती गई। इन सबका ये असर हुआ कि खेती घाटे का सौदा बन गई और किसान अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए शहरों की तरफ पलायन करने लगे। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में बलेसर बत्तीस बीघे का काश्तकार है। वह अपने खेतों से अत्यंत प्रेम करता है और अपनी खेती नहीं छोड़ना चाहता है। बलेसर के बेटे पढ़-लिख कर शहरों में निवास करते हैं। उन्हें खेती करना घाटे का काम लगता है। इसलिए वो इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि बलेसर किसी तरह से भी अपने खेतों को बेंचकर शहर में पलायन कर जाए वे बलेसर को समझाते हुए कहते हैं- "खेती अब घाटे का सौदा हो गयी है पिता जी। खेती से जुड़े रहने में अब कोई लाभ नहीं। खेती में जितना श्रम, संघर्ष और खर्च है, उसकी तुलना में उपार्जन नगण्य, उलटे खेती की परेशानियों से जीवन का सुख-चैन भी गायब, निरंतर असुरक्षा और आतंक के माहौल में रहना। हमें समय रहते खेतों को बेचकर अपनी पूँजी शहर में स्थानान्तरित कर लेनी चाहिए। आगे खेतों के खरीदार भी नहीं मिलेंगे।"[67] किसानों की असली सम्पति उनकी भूमि ही होती है। वह मजबूरी हो या प्रेम अपने भूमि से बंधे रहना चाहता है। किंतु जिस तरह से समय ने खेती-किसानी करने के माध्यम को बदल दिया है, किसान खेती को मजबूरी में छोड़ना चाहते हैं। क्योंकि अब कृषि करना उनके वश की बात नहीं रह गई है। उन्हें अगर कोई और विकल्प मिल जाये तो वे शीघ्र ही कृषि छोड़कर उसे अपना लेना चाहते हैं। हमारे देश में छोटे एवं सीमांत किसान संख्या में सबसे अधिक हैं। इन किसानों के पास भूमि का बहुत कम रकबा होता है। इसलिए वे कृषि करने में और भी असमर्थ होते जा रहे हैं। क्योंकि खेती दिन-प्रतिदिन महंगी होती जा रही है। मैदानी क्षेत्र हो या पहाड़ी हर जगह के किसान खेती से पलायन कर रहे हैं। आज युवा वर्ग पढ़-लिखकर शहर में रोजगार के लिए शहर की तरफ भाग रहे हैं। क्योंकि उन्हें वहीं अपना भविष्य सुनहरा दिख रहा है। प्रेम पुनेठा के अनुसार- "सरकारी क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसरों

का पर्वतीय इलाकों के लिए रोजगार देने के सबसे बड़े क्षेत्र हो गए। इससे पूर्व सेना ही रोजगार का सबसे बड़ा क्षेत्र था। पढ़े-लिखे लोगों का यह पहला बड़ा पलायन था।.......इस पर भी यह पूर्ण पलायन नहीं था क्योंकि तब मैदानों में जाने वालों के परिवार पहाड़ में ही रहते थे। इस तरह उसका गाँव और खेती-किसानी से रिश्ता टूटा नहीं था। स्थिति में परिवर्तन अस्सी के दशक के प्रारंभ से आना शुरू हुआ। जब खेती की जमीन के बंटवारे और उसके और अधिक अलाभकारी होने से व्यक्तियों का खेती से मोहभंग हो गया और वे अपने परिवारों को लेकर मैदानों और महानगरों की ओर पूरी तरह से पलायन कर गए।"[68]

बलेसर के बेटे पढ़-लिखकर शहर की चमक-धमक में खोए हुए हैं और उन्हें वहीं का जीवन रास आ रहा है। हमारे समाज का पढ़ा लिखा युवा वर्ग आने वाली समय की सच्चाई और सरकारी नीतियों के दुष्परिणामों को अच्छी तरह से जानती है। शहर में सचिवालय में काम कर रहा कुलराखन भविष्य में खेती-किसानी में आने वाले संकट के बारे में अपने पिता को बताता है। हमारे देश में जिस तरह से पूंजीपतियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। उससे खेती का काम और भी कठिन होता जा रहा है। एक दिन ऐसा आएगा जब हमारे देश में भी किसानों के खेत पर बड़े-बड़े उद्योगपति खेती करवाएंगे। जब बलेसर कहते हैं कि ऐसा समय कभी नहीं आएगा जब देश में खेती-किसानी बंद हो जाएगी तब कुलराखन उन्हें समझाते हुए कहता है-"खेती होगी पिता जी, बंद नहीं होगी। लेकिन परिवर्तित रूप में होगी। आने वाले समय में बड़े-बड़े उद्योगपति खेतों को खरीद लेंगे। फिर विस्तृत चकलों में घेरेबंदी कर मजदूरों से उन्नत खेती कराएंगे। अपनी सामर्थ्य पर सरकार से कृषि के लिए पर्याप्त अनुदान और सहयोग ले लेंगे। अपनी उस खेती से पैदा उपज स्वतंत्र बाजार में महंगे दामों पर बेचेंगे। इस तरह कृषि कार्य भी उनके उद्योगों की तरह ही लाभ का जरिया बन जायेगा, जैसा अमेरिका में होता है...। अमेरिका की विकसित खेती ही हमारे देश के लिए भी विकल्प बनेगी...।"[69]

किसान अपनी भूमि से जुड़ा होता है और इतना जुड़ा होता है कि किसी भी कीमत पर उससे दूर नहीं होना चाहता है। उसका एक ही मकसद होता है कि किसी तरह से वह अपनी भूमि को बचाए रखे।

यही हालत बलेसर की भी है। वह खेती के सारे फायदे नुकसान को जानते हैं। उन्हें पता है कि आजकल खेती का काम कितना मुश्किल भरा होता जा रहा है। आज के जमाने में बिना किसी अन्य कमाई के खेती का काम करना मुश्किल है क्योंकि जिस तरह से खेती में दिन-प्रतिदिन लागत बढ़ती जा रही है बिना किसी अन्य कमाई के खेती कर पाना जोखिम भरा काम है। अपने बेटों से वह कितना भी क्यों न विरोध करें किंतु अपने मन में वो भी सारी सच्चाई से वाकिफ हैं- "अब मान के धरातल पर वे महसूस कर रहे थे कि कुलराखन का कहना बिल्कुल गलत नहीं था। कृषिकार्य अब तलवार की धार पर चलने से कम कठिन कार्य नहीं रह गया था। न प्रकृति का सहयोग न सरकार का। अपने खुद की सामर्थ्य पे फसल उपजाना। बलेसर देख रहे थे कि उनके गाँव के कई छोटे किसान (दस-पंद्रह बीघे तक के काश्तकार) शहर चले गए थे। उनमें से कुछ ने अपने खेत बेच भी दिए थे, कुछ ने खेतों को नकदी या टीका-बंटाई पर बंदोबस्त कर दिया था। बलेसर अनुभव कर रहे थे, अब गाँव का सफल किसान वही होता था जिसका एक पाँव शहर में तो दूसरा गाँव में हो। शहर की आय को जोड़कर ही गाँव की अच्छी खेती संभव थी।"[70]

पलायन करने के किसानों के सामने कई कारण हैं। वह अपनी मर्जी से पलायन नहीं करना चाहता है अपितु परिस्थितियां ऐसी बन जाती हैं कि उसे मजबूरी में अपना गाँव खेत छोड़कर शहर जाना पड़ता है। क्योंकि गाँव में रोजगार के अवसर नहीं हैं। युवा वर्ग के सामने पढ़-लिखकर रोजगार की तलाश एक मजबूरी है दूसरी तरफ वे खुद भी पढ़-लिखकर खेती जैसा जोखिम कार्य नहीं करना चाहते हैं। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँववालो' उपन्यास का भैरव इतना पढ़ा-लिखा युवक है। वह दिन-रात एक ही सपना देखता है कि गाँव में रहकर खेतीबारी का काम संभाले और यहीं की परिस्थितियों को सुधारने में अपनी उम्र लगा दे। लेकिन उसके परिवार की स्थिति ऐसी है कि उसके पिता खुद नहीं चाहते कि भैरव एक पढ़ने-लिखने के बावजूद खेती में अपना जीवन होम कर दे। परिस्थितियों को देखते हुए कहीं न कहीं भैरव को भी ऐसा लगने लगा। तभी वह अपने मित्र जकीर से कहता है- "मैं क्या करूँ जकीर। मेरे प्रति बाउजी की नाराजगी रोज-रोज बढ़ती जा रही है। उनका मानना है कि पढ़-लिखकर गाँव में पड़ा रहना

सरासर मूर्खता है। खेती की जो हालत हो गई है, अब तो मुझे भी यही लगने लगा है। नौकरी अगर नहीं करूँगा तो घर की फटेहाली भुखमरी में बदल जाएगी।"[71]

गाँव में बिजली और पानी की समस्या से किसानों के खेत की फसलें सूख जातीं। गन्ने की मिल बंद हो जाने से किसानों के सामने फसल बेचने की समस्या और भी ऐसी कई समस्याएं गाँव के किसानों के सामने मुंह फैलाये खड़ी है जिनसे निजात पाने के लिए ही किसान गाँव छोडकर शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं। ऐसी ही हालत से सल्तनत का भाई मतीउर गुजर रहा है। आज गाँव में खेती के सामने ऐसा संकट उत्पन्न हो गया है कि गाँव के जिन युवाओं की खेती में रूचि है उनके पास कोई काम ही नहीं है। मजबूरन उन्हें रोजगार के लिए पलायन करना पड़ता है। मतीउर भी खेती में रुचि रखने के बावजूद भी शहर जाने को बेवश है क्योंकि गाँव में उसके करने के लिए कोई काम ही नहीं बचा है- "छोटी, अब इस गाँव में मेरे करने के लिए कुछ नहीं रह गया है, लगता है जैसे खाली वक्त मुझे काटने दौड़ता है। बुरा न मानना बहन... मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ।"[72]

कुछ तो खेती का जोखिम दूसरा हमारे देश में औद्योगीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने भी खेती से लोगों का मोहभंग करने का काम किया है। आज जिस किसी की भूमि पर उद्योगपतियों की निगाहें जम जाएँ तो उसे पाने के लिए ऐड़ी-चोटी एक कर देते हैं। गाँव के किसान जिनकी पुश्तैनी जमीनें हैं। वे अपनी भूमि से ही जुड़े रहना चाहते हैं किंतु युवा वर्ग को कंपनियों की बातों की चमक इतनी अच्छी लगती है कि उन्हें अपने खेत की मिट्टी की महक नहीं प्रभावित करती है। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में औद्योगीकरण के प्रभाव ने गाँव के युवाओं के मन में खेती-किसानी के प्रति एक घृणा भाव भरने का काम किया है। कंपनी के दलाल जब अपनी बातों से गाँव के किसानों को नहीं प्रभावित कर पाए तो उन्होंने गाँव के युवाओं पर अपना प्रभाव जमाना शुरू किया। गाँव के युवाओं को उनकी गाड़ियों और रुतबे ने ऐसा प्रभावित किया कि उन्हें सच में अपनी जमीनें कंपनी को देने के लिए दबाव बनाने लगे। क्योंकि उनके सामने कंपनी के दलाल बातें ही ऐसी करते कि युवाओं को उन्हीं की बातें सच लगें-

"अम्बाशंकर अपने दोनों हाथ गर्दन के पीछे ले जाता और केंची की शक्ल में बंधी हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोलता, तुम भी चाहो तो अपनी जमीन कंपनी को बेंच के पैसा बैंक में रख दो और कंपनी में नौकरी कर लो। पांच एकड़ जमीन के सौदे पर कंपनी दस हजार रूपए देगी। पचास एकड़ जमीन का सौदा करवा दिया तो घर बैठे लाख रूपए मिल जायेंगे। लड़के सपनों पर सवार हो आसमान में उड़ने लगते और उड़ते-उड़ते ही घर पहुँच जाते। फिर घर में सपने और यथार्थ के बीच मचता घमासान। नतीजतन जमीनों के छोटे-छोटे चक और छोटे होने लगे और बढ़ने लगी कंपनी की हद।"[73] औद्योगीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने भी देश के युवाओं का ध्यान खेती की तरफ से भंग करने का काम किया है। क्योंकि कंपनियों की चमक-धमक युवाओं की आँखों को रुचिकर लगती हैं। इसलिए वे अपने खेतों को बेचकर शहरों में भोग-विलास का जीवन यापन करना चाहते हैं।

खेतिहर मजदूर तो मजदूरी मिलने के अभाव में या अन्य भी कई परिस्थितियों से मजबूर होकर गाँव छोड़कर शहर की तरफ पलायन करता है। खेती किसान और खेतिहर मजदूर के सहयोग से ही संभव है। किंतु बदलते समय ने खेती करने के तौर तरीकों में बदलाव कर दिया है, जिससे खेत मजदूरों के सामने मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। खेत मजदूर गाँव में चरवाही, सब्जी उगाना, पशु-पालन आदि भी कई काम करते थे, किंतु आज खेती में मशीनों का प्रयोग होने से मानव श्रम की उपयोगिता कम हो गयी है। किसानों के शहर में पलायन करने के कारण खेत भी कम होते जा रहे हैं। इसलिए खेत-मजदूरों के सामने और भी काम का संकट उत्पन्न हो गया है और वह गाँव छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का नारायण शहर में लाख कष्टों को झेलने के बावजूद वहीं पर मजदूरी करने को विवश है क्योंकि गाँव में करने को कुछ काम ही नहीं है। पेट भरने के लिए उसे मजबूरी में शहर का रास्ता ही देखना पड़ता है- "देहरी में खड़ी कमला चुपचाप नारायण को सामान समेटते देख रही थी। उसका मन हो रहा था वह नारायण से कहे, मत जाओ। यहीं गाँव में ही मेहनत मजदूरी कर के जिंदगी काट लेंगे। किसी तरह भी दो रोटी का जुगाड़ तो जम ही जाएगा। लेकिन वह भी बदलते समय

को देख रही थी। वह समझ रही थी कि अब सब कुछ आसान नहीं रह गया है। पेट भरना है तो गाँव छोड़ना ही पड़ेगा।"[74] खेतिहर मजदूर के पास अपनी भूमि बहुत ही कम होती है। वह दूसरों के खेतों में काम करके ही अपना और अपने परिवार का पेट पालता है। खेतिहर-मजदूरों का काम भी मौसम के हिसाब से ही चलता है। उन्हें पूरे वर्ष काम नहीं मिलता इसलिए उसे अपने परिवार का पेट भरने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मजदूरी न मिलना ही उनके पलायन का मुख्य कारण है। शहर में भी उन्हें बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है फिर भी काम के आगे वे इन कठिनाइयों को बहुत छोटा समझते हैं। क्योंकि अभाव का जीवन जीने से अच्छा वे कठिनाइयों का सामना करते हुए मजदूरी करना पसंद करते हैं। अरविन्द मोहन के अनुसार- "अस्थायी तौर पर घर छोड़ने वाले काफी सारे ग्रामीण मजदूर अपना पेट पालने भर के लिए खेती और दूसरे कामों में रोजगार तलाशने निकलते हैं। मूलतः यह कदम वे अपने आपको जीवित रखने और बचाने के लिए करते हैं क्योंकि उनके अपने रहने वाली जगह के आस-पास पूरे साल भर लायक रोजगार नहीं मिलता। औपनिवेशिक काल और आजादी के बाद हुआ असमान विकास ही इस मजबूरन परदेसी बनने का कारण है।"[75] किसानों को उनका भूमि प्रेम पलायन करने में बाधा उत्पन्न करता है। वे पहले परिस्थितियों का सामना करते हैं और जब हार जाते हैं तब पलायन करते हैं। किंतु खेतिहर-मजदूरों को तो सिर्फ पेट पालने के लिए अपनी मजदूरी से मतलब है, इसलिए उन्हें जहाँ कहीं भी काम मिलता है वे वहीं पर रहना चाहते हैं। बदलते परिवेश में उन्हें गाँव की अपेक्षा शहरों में अधिक काम मिलता है, इसलिए हर साल बड़ी संख्या में खेत मजदूर गाँव से शहर की तरफ पलायन करते हैं।

5.4 उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान और खेतिहर मजदूर आंदोलन

हमारे देश में किसान और खेतिहर मजदूर हमेशा से शोषण का शिकार होता आया है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शोषण से मुक्ति का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना शोषण का। किसान और मजदूर आंदोलन का इतिहास हमारे देश में बहुत ही पुराना है। भारत में सामंतवाद से लेकर आज

इक्कीसवीं सदी में भी किसान और मजदूर शोषित होता आया है। शोषण के साथ-साथ हमारे देश के किसानों ने शोषण के खिलाफ आवाज उठाना भी सीखा है। अंग्रेजों के आगमन ने हमारे देश में किसानों और मजदूरों की स्थिति को और भी खराब करने का काम किया। अंग्रेजों ने लगान वसूली के लिए स्थाई बंदोबस्त, रैयतवारी, महलवारी आदि प्रथाओं को समय-समय पर क्षेत्र के आधार पर लागू किया जिससे किसानों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गई। घर में खाने को अन्न हो या न हो फिर भी उन्हें लगान अदा करना होता था। खेती में लागत और मेहनत किसान की होती थी लगान कंपनी ले जाती थी। कंपनी ने हर क्षेत्र में अपने जमींदार नियुक्त कर रखे थे जो किसानों से लगान वसूली करते थे। स्वामी सहजानंद सरस्वती के अनुसार- "कभी-कभी ऐसा होता था कि जमींदार की जमीन में किसान अपने हल बैल और बीजादि लगा कर जो कुछ पैदा करता था उसका आधा जमींदार को देने के लिए मजबूर किया जाता था। कुछ स्थानों में जमीन की ठेकेदारी के करते किसान पूरे गुलाम बन गए थे। जो किसान जमींदार से थोड़ी सी भी जमीन लेकर जोतता बोता था, उसे उसके बदले में जमींदार को अपनी बकाश्त या जिरात जमीन में खेती करने के लिए हल, बैल, बीज आदि देने के सिवाय बहुत अंशों में स्वयं मजूरी भी करनी पड़ती थी।"[76]

किसान और खेतिहर मजदूर अपने शोषण के खिलाफ ही कभी जमींदारों से तो कभी सत्ता से संघर्ष करते आ रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में जमींदार प्रथा का तो खात्मा तो हो गया लेकिन किसान और मजदूर का शोषण आज भी जारी है। आज हमारे देश में जमींदारों की जगह महाजन और बैंक और नेताओं ने ले ली है जो किसानों और मजदूरों का शोषण कर रही हैं। देश में किसानों के विकास करने के नाम पर ऐसी कृषि नीतियाँ बनाई जाती हैं, जिससे किसान कर्ज के दलदल में फंसता जा रहा है। मानव सभ्यता के विकास के आरंभ से लेकर आज तक कृषि ही मानव की आजीविका का साधन बनी हुई है। फिर भी कृषि में इतने जोखिम हैं कि किसान और मजदूरों को हमेशा से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। लह्म्बर सिंह के अनुसार- "यदि हम मानवीय इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि यह

एक तरह से किसान आन्दोलन और संघर्षों का ही इतिहास है। भारत में औद्योगीकरण और औद्योगिक विकास के बावजूद हमारी लगभग 70 फीसदी आबादी आज भी आजीविका के लिए कृषि और जमीन पर ही निर्भर है। आबादी के इतने बड़े हिस्से की समस्या सिर्फ इस हिस्से की ही समस्या नहीं रह जाती, बल्कि यह पूरे देश की समस्या बन जाती है। भारत के इतिहास का यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाये तो इतिहास के हर दौर में समस्याओं से बुरी तरह प्रभावित होने के बावजूद किसानी ही हर आंदोलन, हर मोड़ और हर मौके पर इतिहास की चालक शक्ति रही है।"[77]

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के सामने ऐसी कई समस्या हैं जिनसे वह संघर्ष करते हुए दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि हमारे देश में सचमुच किसानों के लिए कोई योजनाएं नहीं चलाई जाती है। सरकार द्वारा योजनाएं तो चलाई जाती हैं किंतु इन योजनाओं का सही लाभ किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को नहीं मिल पाता है। हमारे देश में किसानों को खेतों में इस्तेमाल करने के लिए सरकारी मूल्य पर खाद दिया जाता है। हमारे देश में बिचौलिये और कालाबाजारी के चलते किसान को इस योजना का लाभ नहीं मिल पाता है। उन्हें बाहर से अधिक मूल्य पर खाद खरीदना पड़ता है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के किसान इसी समस्या से जूझ रहे हैं, किंतु वे चुपचाप रहकर इस अत्याचार को सहते नहीं है बल्कि इसके खिलाफ आंदोलन की योजना बनाते हैं- "पहले खाद पर हम विचार कर लें, फिर पानी पर निर्णय करेंगे...। हमारे ऐन मौके पर यूरिया की कालाबाजारी शुरू हो गयी है। कालाबाजारी वाले जानते हैं कि इस समय हमारे धान की फसल को यूरिया की अत्यंत आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं, सरकार ने हम किसानों के लिए यूरिया का मूल्य निर्धारित कर रखा है। हमारे क्षेत्र में वितरण की दुकानें भी हैं। लेकिन वे दुकानें अक्सर बंद ही रहती हैं। खुलती भी हैं तो वितरण साफ जवाब दे देते हैं-निर्धारित रेट वाला यूरिया अभी नहीं आया ...।" लेकिन हम देख रहे हैं, वही यूरिया खुले में मनमाने दामों पर बिक रहा है। इसके लिए हमें समूह में चलकर अपने हक के लिए आंदोलन करना है। हमारे चुपचाप बैठे रहने से कुछ होने वाला नहीं। पिछले वर्ष हमारे आंदोलन पर ही

नजर का रुका हुआ पानी आया था और सरकारी रेट पर बीज वितरण की धांधली भी रुकी थी। हमें यूरिया वितरण की सरकारी दूकानों पर चलकर ताला जड़ देना है।"[78]

नई कृषि व्यवस्था में किसानों के लिए सरकारी मूल्य पर धान खरीद के केंद्र बनाए गए। इन क्रय केन्द्रों की स्थापना का उद्देश्य किसानों को व्यापारी और आढ़तियों के लूट से बचाने के लिए की गई थी। ताकि किसानों को फसल का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। सरकार की अन्य योजनाओं की तरह ये योजना भी किसानों के लिए हितकारी साबित न हो सकी। किसान वहां अपनी फसल लेकर तो जाते हैं किंतु कभी उनमें नमी तो कभी मिट्टी आदि बहाने से धान को खराब बताकर लेने से मना कर देते। किसान ऐसी ही और भी कई समस्याओं का सामना करके किसी तरह से इन केंद्रों पर अपनी उपज बेच पाते थे। उसके बाद उन्हें फसल का भुगतान पाने में भी महीनों तक इन्तजार करना पड़ता। भुगतान प्राप्त करने के लिए भी उन्हें आंदोलन करना पड़ता है- "निहोरा भाई, हम हर मोर्चे पर लड़ेंगे ....। अभी सबसे पहले पैक्स से हमें निपटना है ...। पैक्स ने इस बार हमें जबर्दस्त धोखा दिया। धान लेने के बाद दो माह के अन्दर ही भुगतान का आश्वासन दिया था। लेकिन एक वर्ष होने जा रहा है। हम समझते थे कि पिछले वर्ष बिके हमारे धान के वे रुपये पहले ही मिल जायेंगे...। अपने उन्हीं रुपयों को ध्यान में रखकर हमने इधर-उधर से कुछ भी इंतजाम नहीं किया। अब इस समय तो वे रुपये हर हालत में हमें मिलने ही चाहिए। अपने उन रुपयों के लिए हमें जो करना हो सब करेंगे। हमारे खून-पसीने और खेतों की वह कमाई है, किसी भी बपौती नहीं...।"[79]

किसान तो अपने अधिकार के लिए हमेशा से लड़ता आया है। इक्कीसवीं सदी में वह सरकारी नीतियों के खिलाफ भी लड़ने को तैयार है। सरकार की जिन नीतियों से किसानों के अधिकारों का हनन होता है उनके खिलाफ वह खड़ा हो जाता है। हमारे देश में विकास के नाम पर जो परियोजनाएं चलाई जाती हैं, उनमें किसानों की कृषि योग्य भूमि को अधिग्रहित किया जाता है। किसान के लिए भूमि ही उसकी माँ है, उसके खेत ही उसके पालनहार हैं। वह अपने खेत को किसी परियोजना के लिए कैसे दे

क्योंकि उसकी जीविका उसी पर निर्भर है। उसे कैसी भी परिस्थिति का सामना करना पड़े वह अपनी जमीन को बचाने की कोशिश करता है। हमारे देश में जमीन अधिग्रहण के नाम पर किसान हमेशा से संघर्ष करता आया है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास के किसानों की यही समस्या है कि उनकी जमीन सीमेंट की फैक्ट्री लगाने के लिए अधिग्रहित की जा रही है और किसान उसके विरोध में एकजुट होकर खड़े हैं- "पारवती भाभी ने जो कहा असल बात वोई है। हम अपनी जमीन नई देंगे तो नई देंगे। बस ई म्हारा आखरी फैसला है। कोई पंची पंचैत बैठे याकि कासीनाथ के मुलाजम इधर आके हमको भटकाने की कोसिस करें। फिर चाहे तो चले डांग-सोठा या दराट-दराटी, या फिर चल ले बंदूक गोली। हम न मानने वाले हुए। चाहे कोई तो म्हारी जान ले ले पर ये चिक माटी म्हारी माँ है। फौज में मैंने येई सीखा है कि गरचे इसको बचाने के तईं जान बी देनी पड़े तो दे दूंगा, पर माँ के मत्थे कलंक न लगने दूंगा।"[80]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में केमिकल फैक्ट्री खोलने के लिए किसानों की जमीनें अधिग्रहित करने का फरमान जारी किया गया है। कंपनी की तरफ से गाँव के किसानों को कई तरह के प्रलोभन दिए गए किंतु किसान किसी भी कीमत पर अपनी जमीनें देने को तैयार नहीं है। आंदोलन का नेतृत्वकर्ता रघुनाथ है जो किसानों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित करता है- "रघुनाथ ने कहा कि यह संघर्ष का समय है। यदि हम अपनी जमीन बचाने के लिए खुद आगे नहीं आये तो याद रखिये, साच्छात गौरांग महाप्रभु भी हमारी जमीन नहीं बचा सकते। हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। लड़ने के लिए क्या चाहिए ? सबसे पहले चाहिए कलेजा, जो आप सबके पास है। हम वीर सुभाषचन्द्र बोस, विनय-बादल-दिनेश-बाघा जतिन, खुदीराम बोस के वंशज हैं। लेकिन सिर्फ जिगर के दम पर हम ये लड़ाई नहीं जीत सकते। सो दूसरी चीज जिसकी हमें जरूरत पड़ेगी, वह है हथियार।"[81]

देश में हर वर्ष सरकारी नीतियों के कारण हजारो किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाते हैं। चाहे वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता प्रभाव हो, भूमि-अधिग्रहण हो किसान इन नीतियों के कारण ही आत्महत्या करता है। आज किसान कृषि नीतियों से हारकर यदि आत्महत्या कर रहा है तो दूसरी तरफ

वह सरकार के खिलाफ खड़े होने की ताकत भी अपने अंदर जुटा रहा है। इन सबमें हमारे देश का युवा वर्ग अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एम. एम. चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में समाज का युवा वर्ग ही अपनी सूझबूझ से गाँव वालों को कृषि नीतियों की सच्चाई बताते हैं और उन्हें अपने अधिकारों के लिए सजग बनाने का काम कर रहे हैं। बल्ली का बेटा राजेश अपने पिता की आत्महत्या के पश्चात अपने गाँव और आसपास के गाँव के लोगों को अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखा रहा है। वह चाहता है कि जिन नीतियों के कारण उसके पिता को आत्महत्या करनी पड़ी उन्हीं नीतियों का शिकार अन्य किसान न हो। इसलिए वह अपनी माँ से कहता है- "माँ मुझे किसी ने नहीं बहकाया, हमारे गाँव के बारे में, किसानों के बारे में, जब कोई नेता नहीं सोच रहा है, तब हम जैसे किसानों के बच्चों को ही आगे आना होगा। यह खेती-किसानी का संकट हमारा है, इसलिए इसके समाधान के लिए भी हमें ही लड़ना पड़ेगा।"[82]

इक्कीसवीं सदी में किसान सरकार के खिलाफ आंदोलन करने के लिए विवश है। सरकार पूंजीपतियों के कर्ज को माफ कर देती है जिसकी किसी को कानो-कान खबर नहीं होती है, लेकिन किसानों की कठिनाइयों को दूर करने में अपनी कोई रुचि नहीं दिखाती है। किसानों को न तो समय पर अपने फसल का मूल्य मिल पाता है न ही उनके लिए चलाई गई कृषि नीतियाँ ही कारगर हो रही हैं। अपने अधिकार को प्राप्त करने एवं सरकार के शोषण के खिलाफ ही किसान आंदोलन करने को मजबूर हैं। हरित क्रांति के पश्चात खेती-किसानी के बढ़ते तौर-तरीकों ने भी किसानों में असंतोष का भाव पैदा करने का काम किया। हरित क्रांति से देश में बड़े किसानों को लाभ हुआ किंतु छोटा एवं सीमांत किसान हाशिए पर चला गया। उनकी स्थिति दिन-प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। किसानों का ये वर्ग खेतिहर मजदूर में तब्दील होता जा रहा है। लहम्बर सिंह के अनुसार- "योग्य उजरत, उजरत में महंगाई में वृद्धि के अनुसार बढ़ोतरी, सस्ता अनाज और दूसरी जरूरी वस्तुओं के लिए प्रभावशाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली घरों के लिए प्लाट, मकानों के लिए सरकारी सहायता, उनके अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए व्यापक केंद्रीय

कानून आदि। ऐसे ही कई दूसरे मुदद्दों पर पिछले समय के दौरान देशभर में बड़े पैमाने पर संघर्ष हुए हैं, जिन्हें हम किसान आंदोलन का अभिन्न अंग मानते हैं।”[83]

हमारे देश में किसान तो अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है किंतु खेतिहर मजदूर तो अपने पारिश्रमिक के लिए लड़ रहा है। वह खेतों में काम करता है जिसके लिए उसे अनाज या रूपए पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त होते हैं। खेतिहर मजदूर की लड़ाई उसकी मजदूरी के लिए लड़ाई है। वह जो कार्य करता है उसके लिए उसे वाजिब मजदूरी ही नहीं मिलती है। हर कर्मचारी की मजदूरी बढ़ती है किंतु खेतिहर मजदूर आज भी 150 रू प्रतिदिन की मजूरी पर काम करता है। खेतिहर मजदूर का काम मौसम पर निर्भर करता है। उन्हें वर्ष भर काम नहीं मिलता है यही उनकी समस्या का मूल कारण है। वह अपने मजदूरी की दर में वृद्धि के लिए आंदोलन करता है। उसकी मांग काम को लेकर है कि उसे वर्ष भर काम मिले जिससे वह अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके। सरकार द्वारा खेतिहर मजदूरों को वर्ष में 100 दिन काम देने के उद्देश्य से रोजगार गारंटी योजना की शुरुआत की गई, फिर भी खेतिहर मजदूरों को न ही 100 दिन का काम मिल पा रहा है और न ही मजदूरी। खेतिहर मजदूरों की समस्याओं के लिए किसान एवं सरकार दोनों ही उत्तरदायी होती हैं। इसलिए खेतिहर मजदूरों का संघर्ष भी दोहरा हो जाता है एक तो किसानों के खिलाफ दूसरा प्रशासन के खिलाफ उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

5.5 ऋणग्रस्तता

किसान के लिए कृषि करना कोई व्यवसाय नहीं है, कृषि उनके जीवन का एक हिस्सा है। अपने जीवन के हिस्से को व्यक्ति अपने से अलग कैसे कर सकता है। वह दिन-रात खेतों में अपने परिवार के साथ मिलकर मेहनत करता रहता है। आज की जो कृषि है वह पूर्णतः पूंजीवादी व्यवस्था से प्रभावित है। किसान अपने भूमि पर ही बना रहना चाहता है इसके लिए उसे कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। अपनी भूमि को बचाने के लिए ही वह कर्ज के दलदल में फंसता चला जा रहा है, सच में एक किसान का जीवन जीना बहुत ही जटिलता का काम है। रमेश उपाध्याय के शब्दों में- “जिस किसान जीवन को हम बहुत

सीधा-सादा समझते हैं, वह वास्तव में बहुत ही जटिल, गहन और व्यापक वास्तविकताओं को अपने में छिपाए हुए है। यही कारण है कि साहित्य में इस यथार्थ का चित्रण आसान नहीं है। आज के भारतीय किसान जीवन पर लिखने के लिए इस यथार्थ का ज्ञान तो होना ही चाहिए, उसके परस्पर उलझे हुए विभिन्न आयामों वाले अंतर्विरोधों की सही पहचान भी होनी चाहिए।"[84]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की पूरी कहानी ही कर्ज में डूबे किसान की है। भूमंडलीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने किसानों को हाशिए पर ढकेल दिया है। हरित क्रांति के भारत में लागू होते ही समाज में छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए खेती करना एक बहुत ही जटिल काम हो गया है। पहली हरित क्रांति ने किसानों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को ही खत्म कर दिया, जिस पर निर्भर रहकर ही छोटे एवं सीमांत किसान अपना जीवन यापन करते थे। भारत में कृषि क्षेत्र में छोटे एवं सीमांत किसानों की ही संख्या सबसे अधिक है इसलिए इन्हीं लोगों के लिए हरित क्रांति का आना दु:खदायी साबित हुआ है। शकुन का पूरा परिवार कर्ज में डूबा हुआ है। उसके परिवार की दशा उपन्यास की इन पंक्तियों में देखने को मिलती है- "बैंक का पहले का ऋण अदा करने में ही तबाह हुआ यह परिवार" शुभा बोली- "पड़ोसी होने के नाते मैं जानती हूँ इस परिवार को। इसी कुएं से सरकारी कर्ज के चलते तीन साल से इस परिवार ने त्योहार के दिन भी कभी पूड़ी-पकवान नहीं बनते देखा। पूड़ी-पकवान तो दूर, भर पेट कभी दोनों जून जेवण भी नसीब नहीं हुआ हो, मुझे तो संदेह है।"[85]

उदारीकरण नीति के चलते किसान पूरी तरह से कारपोरेट घराने का हो चुका है। कारपोरेट या कहें कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश में पूँजी लेकर लाभ कमाने के उद्देश्य से ही आती हैं। उनका काम ही होता है कैसे भी करके अधिक से अधिक ग्राहक बनाए। इन्हें किसानों की जमीन, जमीन की गुणवत्ता, सिंचाई के संसाधन, एवं पैदावार से कोई मतलब नहीं होता है। इसलिए खेती में लागत बढ़ती जा रही है और पैदावार दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। फिर भी हमारे देश में पहली हरित क्रांति के बाद, दूसरी हरित क्रांति भी आई लेकिन उससे किसान कर्ज की दलदल में फंसते जा रहे हैं। हमारी सरकार हर रोज बहुराष्ट्रीय कंपनियों

के साथ सौदा करके उन्हें हमारे देश में आने का न्योता दे रही है। जाने-माने कृषि चिंतक देविंदर शर्मा के शब्दों में- "पहली हरित क्रांति ने भारतीय कृषि में रासायनिक खाद, हाइब्रिड बीज और कीटनाशक जिसे अंग्रेजी में लैंड ग्रांड सिस्टम कहा जाता है, शामिल किया तो अब दूसरी हरित क्रांति अमेरिकी कृषि व्यापार के हितों की दिशा में खड़ी की जा रही है। 2005 में मनमोहन सिंह ने अमेरिका में कहा कि भारत में पहली हरित क्रांति ने लाखों लोगों को गरीबी से ऊपर उठा दिया और अब मैं इसलिए खुश हूँ कि अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ मिलकर भारत में दूसरी हरित क्रांति के लिए भारत और अमेरिका ने कृषि के क्षेत्र में साझापन करने का फैसला किया है।"[86]

प्रधानमंत्री जी के भाषण को सुनकर तो ऐसा लगता है कि सच में इन्होनें किसानों के लिए हरित क्रांति लाकर संजीवनी का काम किया है। लेकिन ऐसा नहीं है। किसान के लिए यही हरित क्रांति जहर साबित हो रही है। सरकार नई तकनीकी के तहत जिस बीटी काटन की बात करती है। असल में वही बीटी काटन किसानों के गले का फांस बन रही है। बीटी काटन का प्रयोग जिन-जिन प्रदेशों में बढ़ा वहां पर किसानों के कर्ज में भी बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। महाराष्ट्र के विदर्भ, आंध्र प्रदेश, राजस्थान में इस बीटी काटन ने किसान को पूरी तरह से तबाह कर दिया। संजीव के 'फांस' उपन्यास के तो हर किसान की समस्या का कारण बनी हुई है। ये बीटी काटन के बीज भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की देन है। इसलिए यहाँ पर ये बीज सिर्फ एक सीजन में ही किसानों के लिए लाभदायक सिद्ध हुए दोबारा से खेत बुआई के लिए किसानों को नये सिरे से बीज की खरीददारी करना। किसान एक बार की फसल की बुआई में ही तबाह हो जाता है बार-बार उसे नए खाद और बीज खरीदने पड़ेंगे तो उसकी क्या ही दशा होगी। उस पर सिर्फ कर्ज का बोझ ही बढ़ता जा रहा है-"शेतकरी की एकता तोड़ने के लिए या उनके उद्धार के नाम पर भगवान जाने सन 2002 में आया था कापूस का महाबीज बीटी कॉटन बीज, क्या, तो विलायत से कि अमेरिका से ! विलायती बीज है, नाजुक बीज, खाद चाहिए ? लो ! कीटनाशक भी चाहिए ? लो पैसे नहीं हैं, सरकार कर्ज दे रही है न ! लो ! और पानी ! ऊपर वाला देगा न ! उस साल ऊपर वाले ने दिया भी।

उफ़....क्या रेशे थे ! क्या फलन ! पूरा खेत कपूस से बूढ़े सन्यासी की तरह उजाता हो गया। वही उजास किसानों के मुंह पर-हिंदी फिल्म 'मदर इंडिया' के गीत की तरह .... 'दुःख भरे दिन बीते रे भैया' अब सुख आयो रे, रंग जीवन में नया लायो रे ! लेकिन अगले ही साल झटका लगा। बीटी कॉटन का महाबीज दूसरी बार फिस्स हो गया। अब फिर से बीज खरीदो। फिर से खाद, कीटनाशक, फिर से मजदूरी, फिर से कर्ज यह तो सरासर धोखा है। शेतकरियों में कसमसाहट हुई। फसल में नये-नये कीड़े, नये-नये रोग और बिक्री केन्द्र पर नई-नई बेइमानियाँ। तौल में गड़बड़ी।"[87]

एक किसान को सिर्फ खेती के लिए ही नहीं अन्य कामों के लिए भी कर्ज लेने की जरूरत पड़ती है। सिर्फ खेती के काम जैसे बीज, कीटनाशक, सिंचाई ही नहीं उस पर उसके परिवार की भी जिम्मेदारी होती है, जिसमें उसके बच्चे और उसकी पत्नी भी शामिल होती है। बच्चों की शिक्षा, बेटी की शादी और स्वास्थ्य संबंधित कार्यों के लिए भी उन्हें कर्ज की समस्या का सामना करना पड़ता है, क्योंकि इन कार्यों के लिए सरकार की तरफ से उसे कोई कर्ज देने की सुविधा नहीं है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद यह उम्मीद लगाए बैठा रहता है कि फसल अच्छी हुई तो ये करेंगे, फसल अच्छी हुई तो वह करेंगे। लेकिन घर में फसल आते ही इतने कामों का बोझ आ जाता है कि निजी समस्याओं के लिए उसके पास कुछ बचता ही नहीं। अपनी अन्य जरूरतों के लिए वह या तो अपनी पत्नी के जेवर गिरवी रखेगा या तो कर्ज लेगा- "रामप्रसाद के पास तोड़ी को गिरवी रख कर मिले पैसों से बिजली का बिल भरने के बाद जो पैसे बचे थे उनके खर्च का इंतजाम भी हो गया था। राजेश भी लगभग रामप्रसाद के ही स्तर का किसान था, ऐसे में अगर रामप्रसाद आगे बढ़कर सहायता नहीं करे तो तय था कि अब उसकी बहन के पैरों में जो तोड़ी पड़ी है, उसके बिकने की बारी है। वैसे भी राजेश की स्थिति तो रामप्रसाद की तुलना में और कमजोर है। पढ़ा लिखा तो वह है लेकिन है तो किसान ही।"[88]

देश में हर छोटा किसान एवं सीमांत किसान किसी न किसी का कर्जदार होता है। चाहे वह बैंक हो, खाद की सोसाइटी हो या बिजली विभाग या सरकार का। सारे कर्जों की वसूली किसान से यही

पटवारी साहब लोग ही करते हैं। जो किसानों से रिश्वत भी लेते रहते हैं। रामप्रसाद के परिवार की आखिरी निशानी जो उसकी पत्नी के पैरों की तोड़ी है। आज वह भी ख़त्म हो रही है। आज के बाद उसकी पीढ़ी की यह परंपरा टूट जाएगी। कमला अपनी बहु को वह तोड़ी नहीं दे पाएगी जो उसकी सास ने उसे दी थी। किसान के घर में जब तक धातुएं रहती हैं तब तक वह किसान को पूर्णतः मजदूर बनने से रोके रहती है ! क्योंकि धातुएं ही होती हैं जो उसकी जमीन को बिकने से रोकती है। एक बार ये धातुएं परिवार से समाप्त हो गईं तो फिर किसान को कर्ज से छुटकारा पाने के लिए अपनी जमीन ही बेचनी पड़ती है। रामप्रसाद पर बिजली के कर्ज का बोझ है जो उसे चुकाना है नहीं तो उसकी जमीन कुर्की कर दी जाएगी। रामप्रसाद अपनी पत्नी की तोड़ी लेकर सुनार के पास बैठा है। वह अपनी पीढ़ी की परंपरा को टूटते हुए देख रहा है। उसकी मनः स्थिति देखते ही बन रही है- "कारीगर तन्मयता से अपने काम में लगा है। तोड़ी के टुकड़े करने के। दोनों के लिए यह प्रक्रिया बहुत अलग-अलग अर्थ रखती है। अपने-अपने सापेक्ष सचों के साथ। कारीगर के लिए और रामप्रसाद के लिए। कारीगर के लिए एक पुराना जेवर टूट रहा है और रामप्रसाद के लिए यह एक पुरानी परंपरा टूट रही है। कारीगर के लिए यह प्रक्रिया कुछ शुरू होना है, कुछ फिर से नया बनना शुरू होना, जबकि रामप्रसाद के लिए यह प्रक्रिया कुछ समाप्त होना है, कुछ पुराना समाप्त होना। हमेशा के लिए। कारीगर के लिए यह विशुद्ध रूप से एक धातु है, जबकि रामप्रसाद के लिए यह धातु न होकर विशुद्ध भावना है। धातुएं इसी प्रकार से परेशान करती है, वह धातु न रह कर भावनाएं बन जाती हैं।"[89]

उदारीकरण के दौर में जिन समस्याओं का सामना किसान का रहा है वह है महंगाई। आज किसान के समक्ष जो हाइब्रिड बीज उपलब्ध कराये जा रहे हैं उनसे उनके सामने कृषि का संकट उत्पन्न हो रहा है। सरकार हाइब्रिड बीज को बढ़ावा दे रही है और परम्परागत खेती के समर्थक इसका विरोध कर रहे हैं। लेकिन हमारी सरकारों को किसी के विरोध करने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हाइब्रिड बीज से हमारे किसानों को खेती में अतिरिक्त बोझ पड़ता है। एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का बल्ली

एक बड़ा एवं संपन्न किसान है। वह खेती को अपने तरीके से करता है और खुशहाली का जीवन जी रहा है लेकिन सरकार के सामने किसान की क्या मजाल कि वह सुकून की जिंदगी जी सके। सरकार ने आर्थिक सुधार नीति के तहत देश में विदेशी-बीज का प्रचार प्रसार शुरू कर दिया और अपने परम्परागत बीज को बाजार से गायब करवा कर संकर बीज किसानों को खरीदने पर मजबूर करने लगी। विजय गुप्त के शब्दों में- "आज हम मूल बीजों की जगह संकर बीजों की खेती करने को मजबूर कर दिए हैं। हाइब्रिड बीजों से खेती करना गुलामी करने जैसा है। हाइब्रिड बीज कंपनियों के मालिकों की सख्त नियमावली और शर्तें हैं। बिना उनकी अनुमति से हम बीजों का दुबारा इस्तेमाल नहीं कर सकते। एक बार फसल लेने के बाद अमूमन हाइब्रिड बीज बंजर हो जाते हैं। हाइब्रिड फसलें वैसे भी गरीब और साधनहीन किसानों के लिए कहीं से भी बेहतर नहीं हैं। 90 से 140 दिनों की हाइब्रिड फसलों को बहुत पानी और देख-रेख चाहिए, जो मामूली और छोटी जोतवाले किसानों के लिए संभव नहीं।"[90]

बल्ली एक ऐसा किसान है जो अपनी शर्तों पर अपनी खेती करता है। सरकार द्वारा नये संकर बीज उपलब्ध कराने के बावजूद बल्ली अपने पुराने कॉटन के बीज से ही खेती करता है किंतु फसल तैयार होने के बाद वह बाजार में जब उसे बेचने ले जाता है तो उसका कोई ग्राहक ही नहीं मिलता। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सारे छलावे से हमारी सरकारें भली-भांति परिचित होती हैं फिर भी वे अपने देश में इनके प्रचार-प्रसार पर रोक नहीं लगाती हैं। बल्कि उनकी यहाँ पर पैठ बनाने में भरपूर मदद करती हैं। और किसानों को मजबूरन उन्हीं संकर बीज की खेती करनी पड़ती है। यही हाल बल्ली और बाकी किसानों का भी होता है- "बल्ली ही नहीं, न जाने कितने किसानों ने कर्ज लेकर कपास की आधुनिक खेती शुरू की थी। बल्ली ने अगली फसल के लिए बड़ी मल्टीनेशनल कंपनी से बढ़िया बीज ख़रीदा ताकि इस बार फसल और अधिक अच्छी हो और पुराना कर्ज उतर सके। बल्ली ने ऐसा ही किया। लेकिन बल्ली को नहीं पता था कि बढ़िया बीज के साथ, उस कंपनी का महंगी कीमत पर खाद और कीटनाशक भी खरीदना पड़ेगा, क्योंकि अन्य खाद और कीटनाशक का कोई प्रभाव आधुनिक खेती पर नहीं पड़ता। बीज, खाद

और कीटनाशक एक ही कंपनी से खरीदना बल्ली की जरूरत नहीं, मजबूरी थी। अब बाजार खेती किसानी के बीज बोने से लेकर फसल बेचने तक दाम तय करने लगा।"[91]

अमेरिका जैसे देश हमारे देश में ऐसी तकनीक को लाती हैं जिन्हें दुनिया के हर देश में नकार दिया जाता है। उसने हमारे देश में पशुओं की नई नस्ल विकसित करने से लेकर बीजों की नई-नई किस्में हमारे देश में विकसित करने की पहल हमारे सरकारों के जरिये की है। हमारी सरकारें भी अमेरिका जैसे देशों के आगे नतमस्तक होकर उनको यहाँ कंपनियां लगाने में भरपूर सहयोग करती हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रचार प्रसार ने ही हमारे देश में किसानों को कर्ज लेने पर मजबूर किया है। क्योंकि इतने महंगे बीज, खाद और सिंचाई के लिए देश के गरीब किसानों के पास रकम नहीं होती है इसलिए मजबूर होकर उसे कर्ज लेना पड़ता है। विजय गुप्त के अनुसार- "पांचवे-छठे दशक में अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विकास के झूठे सपने को दिखाकर ग्वाटेमाला की वेहद-उर्वर जमीनों को हथियाना था। उनकी अमूल्य फसलों पर बलात कब्जा कर उस खेतिहर गरीब देश को बर्बाद कर दिया था। बर्बादी का यह पूरा हिसाब-किताब इतिहास के खाता-बही में दर्ज है। लेकिन इतिहास का परिहास देखिये कि जनता के नाम पर कॉरपोरेट पूंजी की मदद और षडयंत्र से सत्ता में आई कांग्रेस ने, और फिर 2014 के 16 वीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजित कर भारत की गद्दी पर बैठी भारतीय जनता पार्टी सरकार ने उन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भूमिचोरों को, ग्वाटेमाला के हत्यारों को हमारी छाती पर मूंग दलने के लिए सादर आमंत्रित करने में जरा भी शर्म महसूस नहीं की।"[92]

बल्ली जैसा बड़ा किसान जो अपनी खेती से खुशहाली का जीवन जी रहा था लेकिन इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने उसके जीवन और उसकी कृषि को तबाह कर दिया। वह पूरी शिद्दत के साथ खेती करता और अपनी खेती के लाभ को सबके सामने बताता। लोग उससे सीख लेते थे लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव के कारण उसे अपनी परम्परागत कृषि को छोड़कर नये ढ़र्रे की कृषि को अपनाना पड़ा और हालत ये हो गई कि उसके खेतों में नए बीज में से एक भी पौधा नहीं निकला।

बल्ली के सारे बीज, खाद और कीटनाशक लगाने के बावजूद उसके खेत परती जैसे रह गए। वह इस बात की शिकायत लेकर इस दफ्तर से उस दफ्तर के चक्कर काटता रहा लेकिन कहीं कोई सुनवाई नहीं हुई। थक-हारकर वह बैठ गया। क्योंकि सरकार ही तो कंपनियों को ऐसे बीज तैयार करके किसानों तक पहुंचवाने का माध्यम बनी हुई है यदि वह किसानों की सहायता करने लगेंगी तो कंपनियों को कैसे फायदा होगा। जो बल्ली गाँव का सबसे संपन्न किसान था आज वह कर्ज के बोझ से दब गया है- "बल्ली एक बार बैंकों का कर्जा तो चुका भी देता, क्योंकि उसको तो सरकार ने समय दिया हुआ था, लेकिन उन सूदखोरों का पैसा कहाँ से लौटाता, जिनसे यह कहकर कर्ज लिया था, फसल के बिकने पर कर्जा उत्तार दूंगा। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दाव पर लग चुकी थी। उसे कोई भी रास्ता नजर नहीं आ रहा था।"[93]

कृषि के पूंजीवादी ढर्रे ने बल्ली जैसे किसान को रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया। गाँव के सबसे बड़े किसान का नाम आज बैंक के सबसे बड़े कर्जदार की श्रेणी में था। उसे पता है कि वह सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों से ठगा गया है। इसलिए वह अपने साथ और भी किसानों को लेकर कभी बैंक तो कभी नेताओं के दफ्तर में चक्कर काट रहा है लेकिन एक किसान की बात को कौन सुनेगा। अब बल्ली पूरी तरह से लाचार हो चुका है। उसके सामने कोई रास्ता नहीं बचा है। किसान के लिए उसकी मरजाद सबसे बड़ी चीज होती है और वह उसे बचाने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। बल्ली जिन किसानों को नए ढंग की कृषि अपनाने के लिए प्रेरित करता रहता था आज उनके सामने जाने में भी उसे शर्म महसूस हो रही थी। वह गाँव के हर व्यक्ति के सामने जाने से कतराता है। वह हमेशा यही सोचता है कि कहीं कोई उसे देख न ले। इसलिए वह ऐसे रास्ते से अपने खेत की तरफ जाता कि उस पर किसी की निगाह ही न पड़े। जो बल्ली कभी शान से चलता था आज उसकी यह दशा हो गयी है कि वह लोगों से आँखे चुराता फिरता है। बंजर खेत कर्ज में डूबा बल्ली हमारे देश की कृषि नीति ने उसे किस हाल में पहुंचा दिया है- "बल्ली ने सबसे पहले अपने खेतों की तरफ देखा, जहाँ उसके खेत लहलहाते थे। बल्ली को अब वे खेत सूखे बंजर दिखाई दे रहे थे। उसने अपने उन खेतों की तरफ भी देखा, जिसमें परम्परागत

रूप से खेती हो रही थी। लेकिन उन खेतों को देखकर उसे ज्यादा सुकून नहीं मिला। उसने अपने खेत की मिट्टी को माथे से लगाया और फिर धीरे-धीरे खेत की मिट्टी को अपने पूरे शरीर में मलने लगा। जब वह अपनी खेत की मिट्टी से पूरी तरह भूत बन गया, तब वह अपने ही खेत में थोड़ी देर के लिए ओन्धा लेट गया।"[94]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की महिला किसान आशा भी इन्हीं कंपनियों के हाथों की कठपुतली बनी हुई है। आशा एक जुझारू संघर्षशील किसान है। घर का पूरा दायित्व आशा पर ही है। अपनी मेहनत और कृषि के बल पर उसने अपने पूरे परिवार को संभाल रखा है। किंतु कपास की नई किस्में उसमें आने वाले खर्च से आशा पर दिन-प्रतिदिन कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है। ऊपर से मौसम की मार और खेतों में ही फसल का सड़ जाना। आशा बुरी तरह से कर्ज के दलदल में फंसती जा रही है- "कर्ज चालीस हजार से बढ़कर 1 लाख हुआ और साल-दर-साल बढ़ता रहा बाढ़ के पानी की तरह। मुलगियाँ जवान हो रही थीं, कोई मुलगा अभी तक देखा नहीं। नवरा को तो दारू को छोड़कर कुछ दिखाई पड़े तब न। पर इन दिनों न नवरा, न मुलगी, न शादी वह निरंतर खेत और कर्ज के बारे में ही सोचती रहती थी। पेड़ की छाया अलग मर्ज थी, पानी अलग मर्ज। खरीफ तो मारी गयी। पिछले दो साल तो पानी सूखते ही कर्ज उधार लेकर रबी बो दी थी, गेहूं और चना। बहुत अच्छा तो न था, पर 'ना' से 'हाँ' भला। लेकिन इस साल थम ही गया पानी। खेत में घुसा तो निकला निकला ही नहीं। खेत की उर्वरता भी न बची। दूसरे साल उस पर दया करके अमला के साहूकार-महाजन आनन्द ने 10 हजार दिए थे। फिर बीया ! फिर कीटनाशक ! फिरर खाद...! कर्ज बढ़ते-बढ़ते जा पहुंचा दो लाख के स्तर पर और अब यह तीसरा साल। इस साल भी वही किस्म। फिर से नहर का पानी डुबो गया फसल को।"[95]

किसानों के सामने खेती करने में इतनी कठिनाईयां आती हैं कि मजबूरन उन्हें कर्ज लेना ही पड़ता है। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास का जकीर पढ़ा-लिखा किसान है। वह लोगों को यह दिखाना चाहता है कि कृषि से भी आसानी से अपनी जीविका चलाई जा सकती है। किंतु उसके गाँव

में सबसे बड़ी समस्या पानी की समस्या है। इसके साथ ही फसल के भंडारण से लेकर उसे मंडी तक ले जाने की भी सुविधा नहीं है। वह पानी की समस्या को दूर करने के लिए वह कर्ज लेकर बोरिंग करवाता है- "सल्तनत ! पूँजी तो मेरी सारी खत्म हो गई है लेकिन कर्ज लेकर भी हम बोरिंग करवाएंगे और डीजल पंप बिठाएंगे। उस पंप की खासियत यह होगी कि उसमे मेरी और मेरी जाति के ही नहीं बल्कि उसकी पहुँच में आने वाले सारे खेत पटाये जायेंगे।"[96]

जकीर के लाख कोशिशों के बावजूद वह पानी की कमी को दूर नहीं कर पाया क्योंकि पंप की पहुँच से दूर वाले खेतों तक पानी ही नहीं पहुँच पाया। न तो नहर से पानी आया न ही वर्षा हुई और न पंप से पूरी तरह खेतों को पानी मिल पाया। समस्या इस कदर बढ़ गयी कि उस पर कर्ज का बोझ बढ़ता गया क्योंकि पानी की कमी से और लगातार फसलों के खराब होने से उसके घर में खाने की समस्या भी उत्पन्न होने वाली थी- "लगातार दो खरीफ और फिर एक रबी फसल में धोखा खाने के बाद जकीर की आंतरिक हालत बिलकुल चरमरा गयी। वह एक अच्छा खाता-पीता मंझोला किसान था। उसके घर की कोठियों में कम से कम पचास मन चावल का भंडार हमेशा जरूर रहा करता था। गाँव में अपने करीबी लोगों के घटने-कमने के समय अपनी ओर से इमदाद मुहैया कराने के लिए उसकी मुस्तैदी गौरतलब थी। आज हालत ऐसी हो गई कि उसे खुद के लिए भी किल्लत के दिन देखने पड़ गए। बोरिंग करवाने एवं पंप बिठाने के समय उसने जो कर्ज लिया वह घटने की जगह बढ़ता ही चला गया।"[97]

हमारे देश की जमींदारी और बंधुआ मजदूरी प्रथा का अंत हो गया लेकिन यह सिर्फ कागजों तक क्योंकि आज भी किसानों को जमींदार या महाजनों के पैरों के नीचे दब कर ही रहना पड़ता है। वे किसानों से बेगार भी करवाते रहते हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में भीमा बा गाँव के सब गरीब किसानों को कर्ज देता है और बदले में उनकी जमीनों को अपने पास रख लेता है। साहिबू का एक पैर भीमा बा की बेगारी करने में ही कट गया है। कायदे से तो भीमा बा को ही साहिबू का इलाज कराना था लेकिन नहीं। भीमा बा ने तो साहिबू के इलाज कराने के बदले उसकी दो एकड़ भूमि को अपने यहाँ बंधक

के रूप में रख लिया। साहिबू और रेशमी को भीमा बा के यहाँ बेगार करनी पड़ती है। एक तो बेगारी करते समय साहिबू का पैर कट गया दूसरा उसके हाथ से उसकी जमीन भी छिन गयी और अब वो पूरी तरह से भीमा बा का बंधुआ बन गया है। क्योंकि उसे भीमा बा के पैसे का ब्याज भी चुकता करना है। सब जगह से सिर्फ कर्ज ही कर्ज और साहिबू की हालत भी ऐसी नहीं कि वह कर्ज चुकता कर पाए- "भीमा बा का कर्जा, बैंक का कर्जा ...जमीन, घर सब नीलाम हो जाए तब भी कर्जा नहीं उतर सकता और जो घर जमीन बिक गयी तो दूर-दर का होना पड़ेगा। कौन सहारा देगा ? सहारा देने जैसे लोग आसपास होते तो पांव के इलाज के लिए जमीन गिरवी ही क्यों रखनी पड़ती ? रेशम के पीहर में भी ऐसा कौन है जो सहारा दे सके। एक भाई है उसके तो खुद ही खाने के लाले हैं ऊपर से हम तीन जने।"[98]

कर्ज की समस्या सबसे ज्यादा तो किसानों के सामने ही आती है क्योंकि उनके पास अपनी जमीन होती है जिसे वह किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहते लेकिन खेतिहर मजदूर उसके पास तो कोई जमीन होती ही नहीं जिसके लिए उसे कर्ज लेने की जरूरत पड़े। लेकिन उसे अपने अन्य कामों को करने के लिए कभी-कभी कर्ज लेना पड़ता है उसको न चुका पाने की स्थिति में कभी कभी उसको खुद को बंधक रखना पड़ता है। यहाँ तक कि उसके द्वारा लिए गए कर्ज को उसकी आगे आने वाली कई पीढ़ियाँ चुकाती रहती हैं। किसान को अपनी जमीन पर खेती करने के लिए कर्ज की जरूरत होती है। मजदूर भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कर्ज लेता है। आज के जमाने में कृषि में बढ़ती समस्याओं के कारण मजदूर जीवन को कृषक जीवन से बेहतर समझता है। इस बात को 'फांस' उपन्यास में मोहन के कथन से प्रमाणित किया जा सकता है-"मन्थर गति से आकाश में उड़ते बादल एक होते, बरसते, उसके पहले ही बिखर जाते। किसानों की आत्महत्या की खबरें आने लगी थीं। फिर तो महामारी की तरह फैलता गया वह रोग। इस सुखाड़ इलाके के इस मर्ज का कोई इलाज नहीं। जानबूझ कर बेटी विद्या का ब्याह किसान से नहीं, मजदूर परिवार में किया। चन्द्रपुर के मजदूर से। पांच एकड़ खेत दोनों बेटों की पढ़ाई और बेटी की शादी में होम हो गए।"[99] मोहन के इस कथन से ही पता चलता है कि किसानी का जीवन

आसान नहीं होता है। उसे हर काम के लिए कर्ज की समस्या सताती रहती है। कर्ज ले ले तो चुकाये कहाँ से। किंतु मजदूर को किसान की तरह अपने जमीन बचाने की चिंता नहीं होती है।

5.6 आत्महत्या

किसान और मजदूर का नाम आते ही उनके साथ ही आत्महत्या का प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो जाता है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत गाँव की जनता कृषि पर ही निर्भर है। लेकिन वैश्वीकरण के पहले के दौर का किसान इतना बेवश और लाचार नहीं था, जितना अब हो गया है। प्राचीन काल से अब तक किसान और भूमिहीन किसान लगातार शोषित ही होता आया है। कृषि के आरंभिक दौर जब से भूमि के आधार पर किसानों की श्रेणियां बनीं तभी से शोषण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। सामंती युग से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक किसान और खेतिहर मजदूर का शोषण होता रहा किंतु उसने कभी हार न माना। क्योंकि किसान और खेतिहर मजदूर का जीवन ही संषर्षमय होता है। उदाहरण स्वरुप हम प्रेमचंद के 'गोदान' के होरी को ही ले लें उसने अपने जीवनपर्यंत किन-किन कठिनाइयों का सामना नहीं किया। उसकी एक छोटी सी इच्छा गाय पालने की थी वह भी पूरी न हो सकी। कठिनाइयों से जूझता हुआ वह एक किसान से खेतिहर मजदूर बन गया फिर भी उसने कभी जीवन की कठिनाइयों के सामने घुटने नहीं टेके निरंतर उनसे संघर्ष करता रहा। होरी के संघर्षशील स्वभाव को 'प्रेमचंद' ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है- "आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है। लेकिन वह संघर्ष में पराजित नहीं हुआ। जब कंकर खोदने का काम शुरू करता है तब मानो एक नया जीवन शुरू कर रहा हो। हीरा से मिलकर उसे बेहद खुशी होती है। जिस दिन वह लू लगने से मरने को होता है, उस दिन उसकी मानसिक दशा यह थी- "जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं हैं। होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है।"[100]

किसान का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षों से भरा होता है। उसे कभी खाद, कभी बीज, पानी, बिजली आदि की समस्याएं सताती रहती हैं तो कभी वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो कर्ज लेता है, उसे चुकाने की चिंता उसे सताती रहती है। समय-समय पर प्राकृतिक आपदाओं के आगे तो वह एकदम ही मजबूर हो जाता है, क्योंकि इस पर किसी भी मनुष्य का कोई वस नहीं होता है। जीवन में कितनी भी समस्याएं क्यों न आ जाए लेकिन किसान कभी हार नहीं मानता है, वह इन कठिनाइयों से कभी घबराकर मौत का रास्ता नहीं अपनाता था। वह इन कठिनाइयों को अपनी तकदीर समझ कर इन्हीं से लड़ने के लिए निरंतर प्रयास करता रहता था, किंतु आज के जमाने की कृषि ने हमारे देश के किसानों को इस कदर तक बेवश बना दिया है कि जब उसे अपनी समस्याओं का कोई हल नहीं नजर आता है तो वह अपने लिए आत्महत्या का मार्ग चुन लेता है। रामकिशोर मेहता के अनुसार- "इतिहास साक्षी है एक वर्ग के रूप में किसान की प्रवृति आत्महत्या करने की कभी नहीं रही यद्यपि सबसे अधिक प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप किसान झेलता रहा है। वह बहुत संतोषी, थोड़े में गुजारा करने वाला, वस्तु विनिमय के आर्थिक व्यापार में जीवित रहने वाला रहा है। उसने सूखा, अतिवर्षा, बाढ़, टिड्डी दलों का आक्रमण झेला है। वह महामारियों का शिकार हुआ है। वह जर, जोरू और जमीन के संघर्ष में मरा है। एक ऐसा समय भी था जब किसान कई कारणों से मर जाते थे। वैसे ही समय-समय पर परिवार के परिवार काल के ग्रास बन जाते थे। आत्महत्या कर जीवन संघर्ष से भगाने की आवश्यकता उसे पड़ी ही नहीं। किसानों की आत्महत्याएं बहुत हद तक इस आधुनिक युग की देन हैं।"[101]

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूरों की आत्महत्या को एक बड़ी समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' के रामप्रसाद को ही देखें तो वह एक खेतिहर मजदूर का जीवन ही जी रहा है। क्योंकि उसके पास सिर्फ दो एकड़ खेत हैं, जिससे वह अपना और अपने परिवार का पेट पालता है। इसके अतिरिक्त वह बंटाई पर भी खेती करता है। इसलिए वह कहने को तो किसान है लेकिन काम से मजदूर। रामप्रसाद जैसे किसान की स्थिति को उपन्यास की

ये पंक्तियाँ बखूबी उभारती हैं- "हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार है, बैंक का, सोसाइटी का, बिजली विभाग का या सरकार का। सारे कर्जों की वसूली इन्हीं आर.आर.सी के माध्यम से पटवारी और गिरदावरों को करनी होती है। वसूली कितना खौफनाक शब्द है, यह कोई कर्जदार ही बता सकता है। वसूली के ठीक बाद की प्रक्रिया है कुर्की। यह जो कुर्की है, यह अपने नाम से ही किसान को डराती है। कुर्की में वसूली से ज्यादा डर इज्जत उतरने का होता है। किसान, कर्जा, कलेक्टर और कुर्की चारों नामों को साथ लेने में भले ही अनुप्रास अलंकार बनता है, लेकिन यह किसान ही जानता है कि इस अनुप्रास में जीवन का कितना बड़ा संत्रास छिपा हुआ है।"[102]

उपन्यास की इन पंक्तियों से ही अंदाजा लग जाता है कि क्यों छोटा, सीमांत किसान या खेतिहर मजदूर आत्महत्या करने की स्थिति तक पहुँचता है। हमारे देश में आधुनिक कृषि प्रणाली ही ऐसी बन गई है कि छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए कृषि करना अपनी मृत्यु को ही चुनना है। क्योंकि उनके लिए कहीं से ऐसा कोई रास्ता नहीं रहता जिस पर वह सरलतापूर्वक चल सके। हमारे देश में किसानों को फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है उसमें भी आये दिन कोई न कोई रोड़ा आता ही रहता है। लेकिन जब किसानों की यही उपज बाजार में अलग-अलग रूपों में तैयार किया जाता है तो उसका कोई समर्थन मूल्य नहीं होता है। रामप्रसाद जैसे किसान से बैंक का कर्ज, बिजली का कर्ज सरकार की तरफ से जबरदस्ती वसूला जाता है। लेकिन पूंजीपतियों के करोड़ों रुपये सरकार कब माफ कर देती है, किसी को कानोंकान खबर तक नहीं होती है। बैंक और बिचौलिये मिलकर रामप्रसाद को इस हालत में पहुंचा देते हैं कि उसके पास कर्ज चुकाने का कोई रास्ता ही नहीं बचा है। जो कर्ज उसने बैंक से लिया ही नहीं उसका नोटिस उसके नाम पर जारी कर दिया गया है- "हुजुर मैंने तो एक पइसा भी नी लियो बैंक से, म्हारी कुर्की करने को नोटिस दइ दियो। गरीब किसान हूँ हुजुर, छोटी-सी जमीन है, बाल-बच्चे पाली रियो हूँ जमीन से। सूबे से गाँव से चला, तेसील में गया, तो पतो चल्यो कि आज कोई भी नी मिलेगा, सब मीटिंग में गया है, बैंक गयो तो उनने के दिया कि पटवारी, तेसीलदार करेगा हम नी कर सकते अब कुछ भी। सूबे से एक दाना

अन्न का नी डाल्यो है पेट में, इनंग से उनंग फिरतो फिर रयो हूँ पागल समान। म्हारे बाल-बच्चा होन को कँई होमगो हुजुर...म्हारे बचई लो साब, म्हारे बचई लो।"[103]

रामप्रसाद को इस हालत में पहुँचाने वाला हमारा शासन तंत्र है। बैंक के झूठे कर्ज ने उसे आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया। बैंक का नोटिस लेकर वह कहाँ-कहाँ नहीं भटका लेकिन उसकी किसी ने एक न सुनी। बारिश और ओले ने उसकी पूरी फसल तबाह कर दी। उस पर भी उसे मुआवजा पाने के लिए रिश्वत भी देनी पड़ेगी। कर्ज और ऊपर से फसल में तबाही रामप्रसाद को कोई रास्ता न सूझा तो वह आत्महत्या कर लेता है। किंतु उसकी आत्महत्या या शासन द्वारा किए गए हत्या को भी उसका पागलपन बताया जाता है। जिले का कलेक्टर श्रीराम परिहार अपने को निर्दोष साबित करने के लिए रामप्रसाद की हत्या को कृषि के कारणों से न करने वाली आत्महत्या साबित करना चाहते हैं- "अरे भाई ...तो पता करो कि मामला क्या है ? सचमुच आत्महत्या है कि नहीं ? और अगर है भी तो उसके पीछे कोई दूसरा कारण तो नहीं है। क्या किसान केवल एक ही कारण से आत्महत्या करता है ? दूसरा कोई कारण नहीं होता है क्या ? लेकिन नहीं सबको बस एक ही बात दिखती है, किसान ने आत्महत्या की तो उसके पीछे खेती ही कारण होगा और कुछ नहीं।"[104]

किसानों की आत्महत्याएं देश में अनेक कारणों से हो रही हैं। राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास में स्वामीराम की आत्महत्या की मूल समस्या पानी की समस्या है। जिस प्रकार जीवन जीने के लिए पानी हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। उसी प्रकार खेती के लिए भी बीज और खाद के बाद सिंचाई के लिए पानी ही सबसे आवश्यक वस्तु है। हमारे देश में किसानों के सामने पानी का संकट एक बड़ी समस्या है। देश के कुछ राज्य लगातार सूखे की समस्या का सामना करते हैं, तो कुछ हर साल बाढ़ की समस्या से अपने फसलों को गंवा देते हैं। हमारे देश की सरकारों को पता है कि हमारे देश का किसान पानी की समस्या का सामना कर रहा है फिर भी वह उनके लिए कुछ नहीं करती है। पूरा उत्तर भारत सूखे की समस्या का सामना कर रहा है। वहां के भूजल का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है। किंतु सरकार

की तरफ से सिंचाई की सुविधा के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठाए गए हैं। किसान और खेतिहर मजदूरों के लाख कोशिशों के बावजूद सरकार उनकी मांगो पर कोई ध्यान नहीं देती है। प्रभाकर श्रोत्रीय के अनुसार- "तमाम सामाजिक आन्दोलनों और पर्यावरणविदों की चेतावनी के बावजूद बिजली उत्पादन और सिंचाई के नाम पर भीमकाय बांध बनाये गए। इससे मानव-सभ्यता की जो हानि हुई वह तो है ही, बाढ़ और सूखे के खतरे लगातार सघन हुए। पिछले दिनों बांध की वजह से रुकी नदी के कारण आन्दोलनकारी किसानों को गोलियों का शिकार होना पड़ा था।"[105]

राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास के स्वामीराम की आत्महत्या का मूल कारण सूखे की समस्या है। वह अपने खेतों में पानी पहुँचाने के लिए बोरिंग करवाता है किंतु एक भी बोरवेल से पानी नहीं निकलता है। चूंकि उसे बोरिंग करवाने के लिए कर्ज भी लेना पड़ता है। किंतु कर्ज चुकाने का कोई मार्ग न होने पर स्वामीराम आत्महत्या का रास्ता अपनाता है- "स्वामीराम छोटा किंतु समर्थ और कुशल किसान था। वह पूरी तरह आत्मनिर्भर था। पर सूखे और अकाल की मार विनाशकारी होती है। पानी की खोज में स्वामीराम ने एक के बाद एक तीन बोरेवेल डाले और सब फेल हो गए। वह कर्ज में डूब गया।"[106]

स्वामीराम के सामने कर्ज और पानी दोनों की समस्या थी और दोनों में से किसी एक का भी निदान उसके पास नहीं था। हमारे देश में बिचौलिये और सरकारी नुमाइन्दे इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि वे किसानों की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाते हैं। उन्हें पता है कि किसानों की शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा नहीं है कि उसे सरकार की सब नीतियों की जानकारी हो सके, इसी बात का नाजायज फायदा उठाकर वे किसानों को ठगने का काम करते हैं। लाला को पता होता है कि गाँव के किसानों को यह पता नहीं है कि गाँव की जमीन में बोरिंग डलवाने का कोई फायदा नहीं है क्योंकि ये डार्क एरिया है। जहाँ की जमीन से पानी निकालना नामुमकिन है। इसलिए वह किसानों को बहकाकर कर्ज भी देता है और बदले में उनसे उनके खेत रेहन रखवा लेता है। जब किसान कर्ज नहीं चुका पाते हैं तो वे खेत लाला के हो जाते हैं- "लाला ने बोरेवेल के धन्धे से गाँव को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया था। अनाप-शनाप बोरिंग करा

वह लाखों कमा रहा था। उसके सम्पर्क देश भर में फैले थे। जमीन रेहन पर रखवा कर्ज भी वही देता था। काफी जमीन पर उसका कब्जा हो गया था। उसके कुकृत्यों में लेखपाल और पंचायत के सदस्यों की मिली-भगत थी।"[107]

किसानों को कृषि करने के लिए जो मूलभूत आवश्यकताएं वो भी नहीं पूरी हो पा रही है और न ही उनकी समस्याओं पर सरकार गंभीरता से विचार ही करती है। हमारे देश में दिन-प्रतिदिन खेती और किसानी पर संकट गहराता जा रहा है। इसी कारण से ग्रामीण आबादी की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है। किसान और खेतिहर मजदूरों की बढ़ती समस्याएं ही उन्हें आत्महत्या के मार्ग पर ढकेल देती हैं। सबसे बड़ी बिडंबना तो यह है कि हमारी सरकारें खेतिहर मजदूरों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं को सामने ही नहीं लाना चाहती हैं। रंजना पाढ़ी के अनुसार- "खुदकुशी तो एक ज्यादा गहरे रोग का लक्षण भर है। रोग यह है कि पूरे कृषक समुदाय का गैर-कृषिकरण किया जा रहा है। आज तक दर्ज ढाई लाख से ज्यादा किसानों की आत्महत्याएं लाखों अन्य किसानों, खासकर खेतिहर मजदूरों की सच्चाई को उजागर करती हैं जो इस देश में तबाही के कगार पर हैं। किसान आत्महत्याओं के लगभग सारे अध्ययनों और समाचारों में खेतिहर मजदूरों द्वारा आत्महत्या के मामले शामिल नहीं किए जाते हैं। उदाहरण के लिए पंजाब के भटिंडा और संगरूर जिलों में कुल 2890 आत्महत्याएं दर्ज की गयी हैं, इनमें से 61 प्रतिशत किसान और 39 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे।"[108]

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँववालो' उपन्यास का जकीर एक पढ़ा-लिखा किसान है। वह पढ़-लिख कर भी खेती ही करना चाहता है और एक मिसाल कायम करना चाहता है कि खेती-किसानी से भी अच्छी तरह से जीवन-यापन किया जा सकता है। किंतु जकीर एक किसान है और हमारे देश में किसान का अच्छा सोचना कभी सही साबित नहीं हो पाता है। जकीर के गाँव की मिट्टी जो गन्ने और धान की फसल के लिए अच्छी है किंतु गन्ने की मिल के बन्द होने से किसान गन्ने की खेती करना बंद कर देते हैं दूसरी तरफ उसके गाँव की नहर में पानी न आने से वहां पर धान की खेती भी खराब होने लगी।

किसान पानी की कमी और अनाज बेचने की समस्या से तबाह हो गए। जकीर इन समस्याओं से उभरने के लिए तरह-तरह की तरकीबें लगाता है। खेती में अनेक तरह के नए प्रयोग करके अपनी समस्याओं को कम करना चाहता है लेकिन उसकी एक भी सूझबूझ सफल नहीं हो पाती है। वह वह अपनी कुल जमा-पूँजी लगाकर अपने खेत और गांव वालों के खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए टयूबवेल लगाता है फिर भी सभी खेतों तक पानी न पहुँचने से फसल सूख जाती है और जकीर की जमा पूंजी भी खत्म हो जाती है। वह एक बार फिर योजना बनाकर प्याज की खेती से अपनी गरीबी दूर करना चाहता है किंतु उसमें भी उसे सफलता नहीं मिल पाती है। प्याज की अच्छी पैदावार होने से उसका मूल्य गिर गया। अक्सर हमारे देश में ऐसा होता है कि जब किसी फसल की पैदावार अच्छी होती है तो उसका मूल्य गिर जाता है और किसान मजबूर होकर बिचौलिये और आढ़तियों को औने-पौने दाम पर अपनी फसल बेचने को मजबूर हो जाता है। पैदावार अच्छी हो तो फसल बेचने की समस्या और पैदावार खराब हो तो भी समस्या किसान तो समस्याओं से ही घिरा रहता है। कोई भी सरकार हो किसानों की समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेती है और न ही उसे दूर करने का प्रयास ही करती है। संजय रोकड़े के अनुसार- "किसानों की मौजूदा समस्या अनाज, दलहन, प्याज और सोयाबीन में उत्पादन अधिक होने और बाजार में भाव न मिलने से उपजी है। लेकिन क्या भाजपा, क्या कांग्रेस हर कोई इसे अवसर के रूप में देख रही है। समाधान नहीं करना चाहती है। विपक्ष में रहते हुए सारे दलों के नेता ऊँची आवाज में किसानों के पक्ष में बोलते थकते नहीं हैं। किसानों को जब तो चाँद दिलाने का वादा करते हैं पर सत्ता में आते ही किसान उनकी प्राथमिकता वाली सूची से गायब हो जाते हैं।"[109]

यही स्थिति जकीर की होती है। वह जितना अपनी समस्याओं को कम करने की कोशिश करता है उतनी ही उसकी समस्याएं बढ़ती जाती हैं। वह हर बार नई उर्जा के साथ नई तरकीब सोचता और हर बार हार जाता है। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसका रोम-रोम कर्ज में डूब जाता है। जकीर जैसा हिम्मती किसान भी अपनी उम्मीदों को खो देता है। उसके जिगरी दोस्त भैरव और सल्तनत भी उसकी

खोई उम्मीद को वापस लेन में नाकाम साबित हुए। जकीर जितनी भी कोशिश करता वह कर्ज में डूबता जाता और अंत में जकीर भी वही रास्ता अपनाता है जो हर निराश किसान अपनाता है, आत्महत्या- "यह एक और मोर्चा था जहाँ किसान अर्थात जकीर पराजित हो गया। कभी पानी के बिना खेत परती रह जाते हैं .... कभी घर में आई उपज बर्बाद हो जाती है .... इसके अलावा भी न जाने किन-किन मोर्चों पर कितने-कितने दुश्मन हैं किसानों के... कीड़े, चूहे, चोर, जानवर, पक्षी, तूफान, पाला, लू और अब यह सरकार भी जो उचित भंडारण तक की व्यवस्था उपलब्ध नहीं करवा सकती। कोल्ड स्टोरेज के बिना या फिर कोल्ड स्टोरेज में बिजली के बिना पूरे देश में हजारों टन प्याज की तरह के कच्चे उत्पाद हर साल सड़ जाते हैं।"[110]

हमारे देश में किसान स्वयं आत्महत्या नहीं करना चाहता है उसके सामने परिस्थितियां ही इस कदर उत्पन्न हो जाती हैं कि वह मजबूर होकर आत्महत्या का रास्ता अपनाता है जकीर ने तो खेती का चुनाव अपनी खुशी से किया था वह भला क्यों आत्महत्या करता लेकिन सत्ता, प्रशासन और सरकारी नीतियों ने उससे उसका जीवन छीन लिया। जकीर ने एक दिन प्रसन्नतापूर्वक भैरव से कहा था कि- "देखना भैरव मैं एक मिसाल कायम करूँगा कि खेती करना और किसान होना भी एक इज्जतदार काम है। मैं एक ट्रैक्टर खरीदूंगा... फिर मेरे पास कार भी होगी।"[111]

खेती के प्रति जकीर का जुड़ाव इन पंक्तियों में साफ झलक रहा है। किंतु अपनी परिस्थितियों के आगे वह इस कदर मजबूर हो गया कि आत्महत्या का रास्ता अपनाने पर विवश हो गया। एम. एम. चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का बल्ली जो एक संपन्न किसान है। वह परंपरागत खेती को अपनाकर अपनी खेती से अच्छा मुनाफा कमा लेता है। किंतु सरकार द्वारा लागू की गई नई कृषि नीति ने उसकी सूझबूझ को जड़ से उखाड़कर फेंक दिया। हमारे समाज में बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कोरपोरेट जगत को मुनाफा कमवाने के चक्कर में सरकार कृषि जगत को जड़ से नष्ट करने में लगी हुई है। उसका हर मकसद कोरपोरेट जगत के फायदे से जुड़ा होता है जिसमें वह किसानों को मोहरा बनाकर अपना उद्देश्य पूरा करने

में लगी हुई है। कथाकार गौरीनाथ के अनुसार- "अब जो नेस्तनाबूत करने का अभियान चल रहा है, उसकी जद में किसान और कृषि-क्षेत्र से जुड़े लोग हैं। फलतः आज भी कोई भी किसान साबूत नहीं बचा है। उसे बीज विहीन करने का खेल चरम पर है। रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से जमीन को बंजर बनाने के साथ ही जल स्रोतों पर भी आक्रमण तेज है। कर्ज का गणित तो अब किसी से छुपा नहीं है। कृषि क्षेत्र से मजदूरों का पलायन उन्हें जड़-विहीन करने के बाजारवादी हमले का अंग है। घाटे की खेती और किसानों की आत्महत्या तो एक षडयंत्र है, अभियान समूचे किसान समुदाय को जमीन और कृषि से बेदखल करने के साथ ही उस पर सम्पूर्ण कब्जा जमाने का है।"[112]

किसान एवं आसपास के गांवों के अन्य किसान भी अपनी खेती संबंधी समस्याओं को लेकर बल्ली के पास ही आते थे क्योंकि बल्ली के पास से ही उन्हें खेती करने के अलग-अलग तरीके की जानकारी मिलती थी। किंतु नई कृषि नीति के लागू होने से बल्ली के सारे तरीके फेल हो गए। बाजार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बेचे जा रहे बीज, खाद और कीटनाशक के प्रयोग से खेती की जाने लगी। बल्ली जैसे किसान जो अपने देशी बीजों के प्रयोग से खेती करते थे। उनकी फसल तैयार होने पर मंडी में उसके खरीददार ही नहीं मिलते थे। हारकर बल्ली भी उन्हीं हाइब्रिड बीज और खाद तथा उसके साथ मिल रहे कीटनाशक के प्रयोग से खेती करने लगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीज की यह खासियत होती है कि किसानों को उसी कंपनी के खाद और रासायनिक उर्वरक भी खरीदने पड़ते हैं। ये बीज और खाद इतने महंगे होते हैं कि साधारण किसान की पहुँच से परे होते हैं। एक बार किसान किसी तरह से कर्ज लेकर ये बीज और खाद खरीद भी ले तो दोबारा फसल बोने के लिए उसे फिर से नये बीज लेने पड़ते हैं। इस प्रकार किसानों पर हर फसल बोआई के समय एक नये कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है। और एक दिन वह कर्ज में डूब जाता है। बल्ली की भी यही दशा हुई। उसने महंगे बीजों का प्रयोग तो किया किंतु उन बीजों से उसके खेत में एक भी पौधा नहीं उगा। बल्ली पर तो कर्ज का बोझ चढ़ ही गया और फसल भी नहीं तैयार हुई। इन कंपनियों को हमारे देश की सरकारें ही फलने-फूलने के लिए जमीन देती हैं इसलिए इनकी करतूतों की

शिकायत भी कहीं नहीं की जा सकती यही कारण है कि बल्ली जैसे किसानों की कोई नहीं सुनता- “नंगला गाँव में विपक्षी राजनीतिक दल जब भी आये, उन्होंने वर्तमान सरकार की आलोचना की, लेकिन उन कंपनियों को कटघरे में खड़ा कभी नहीं किया, जिन्होंने किसानों को बर्बाद कर दिया। दुनिया जानती थी कि जो आज विपक्ष में हैं, उन्ही की सरकार ने विदेशी कंपनियों को खेती, किसानी में पसरने का लाइसेंस दिया था।”[113]

विदेशी कंपनियों के दुष्प्रचार ने ही बल्ली जैसे किसान को कर्ज के दलदल में फंसा दिया। उसकी संपन्नता को दरिद्रता में बदल दिया। बल्ली की असली प्रसन्नता और हिम्मत उसके खेत ही थे। किंतु हाइब्रिड बीजों ने उसके खेतों को बंजर बना दिया। पहले वह अपने लहलहाते खेतों को देखकर फूले नहीं समाता था किंतु आज अपने सूखे बंजर खेतों को देखकर वह दुःख में डूब गया है। जब उसके सामने समस्या का कोई निदान नहीं नजर आया तो वह अपने खेतों में ही आत्महत्या कर लेता है- “शाम तक पूरे गाँव में खबर फैल गयी, बल्ली ने अपनी टयूबवैल पर खुदकुशी कर ली। पूरे गाँव में जैसे मातम छा गया। पहली बार इस गाँव में ही नहीं इस राज्य में एक बड़े किसान ने आत्महत्या की थी। इससे पहले कभी नहीं सुना था कि संपन्न राज्य में एक बड़े किसान ने आत्महत्या की हो। इससे पहले अखबारों में सिर्फ छोटे किसानों की आत्महत्याओं की खबरें आयीं, जो ज्यादा दिन अखबारों की सुर्खियाँ नहीं रहीं।”[114]

सुनील चतुर्वेदी के ‘कालीचाट’ उपन्यास का युनुस जो कहने को तो किसान है किंतु काम से खेतिहर मजदूर है। उसकी पूरी जिन्दगी ही समस्याओं से संघर्ष करते हुए निकल गयी। वह एक संघर्षशील जुझारू किसान है जिसने कभी भी अपनी समस्याओं के आगे घुटने नहीं टेके अपितु उनका जमकर मुकाबला किया। वह सरकार की योजनाओं पर पूरे लगन के साथ अमल करता और फिर हार जाता। यही उसकी नियति बन गई। खेत में बोरिंग करवाने से लेकर पशुपालन, मुर्गीपालन आदि कई योजनाओं को अपनाने से वह दिन-प्रतिदिन कर्ज में डूबता चला जाता है। इतने संघर्षों के बाद वह अपने मन की व्यथा को सीताराम के सामने उजागिर करता है- “सीताराम, या बात तू भी समझे कि किसान इत्ती जल्दी

मरने की नी सोचे। कित्ती ऊँच-नीच तो अपनी जिंदगी में सहज में ही सहन कर ले हैं। कोई के मालूम भी नी पड़ने दे। पर जब साहूकार, बैंक, अफसर, नेता सबका सब मिलके लबुरने लग जाय और सरकार भी किसान की नी सुने तो फिर उका पास मरने सिवा कई चारो है। तू ही बता आज की तारीख में सबसे सस्तो कई है.....किसान की फसल।' युनुस के स्वर में गहरी निराशा थी।"[115]

युनुस की इस निराशा का कारण सरकारी नीतियाँ एवं उसका कर्ज है। इन सबका तो वह सामना भी कर लेता किंतु बैंक की धोखाधड़ी ने उसकी कमर ही तोड़ दी। जिस बैंक से उसने कभी कर्ज लिया ही नहीं उसका भी उसे कर्जदार बना दिया जाता है। बैंक का कर्ज तो वह किसी भी हालत में चुकाने की स्थिति में नहीं था। इन्हीं समस्याओं ने युनुस से उसके प्राण छीन लिए। हमारे देश में कोई भी सरकारी नीतियाँ एवं योजनाएं किसानों की समस्याओं को कम करने में सफल नहीं हुई है। जो भी किसान इन योजनाओं को अपनाता है उसकी स्थिति युनुस के जैसी ही हो जाती है। किसान जिन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए सरकारी नीतियों को अपनाता है वही उसके प्राण छीनने का सबब बन जाती हैं। इसलिए ये तो साफ है कि हमारे देश में बैंक, महाजन और सरकारी नीतियों ने हमारे किसानों के पास आत्महत्या के अलावा और कोई मार्ग शेष नहीं छोड़ा है। अनिल चमड़िया के अनुसार- "आत्महत्या के कारण बहुत साफ हैं और वह है सदियों से पीड़ित किसानों को दिखाए गए भड़कीले समृद्धि के सपने। वास्तव में उन्हें कर्ज में फांसने का यह शिकंजा है। ताकि उसके पास जो जमीन, बीजों की विरासत, खेती की परंपरागत कुशलता है, उससे भी वह हाथ धो बैठे। महाजनों की गिरफ्त वाला बाजार इन पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। इस तरह से इन सपने के सौदागर ने किसानों के सामने दो ही रास्ते छोड़े हैं या तो गुलामी या फिर मौत। सबसे बड़ी बात कि इस तरह की साजिशों का जाल इस तरह बुना जाता है कि उसकी बारीकियों को आमतौर पर समझना भी मुश्किल होता है। जरा इस बात पर गौर करिए कि किसान तो आत्महत्या कर रहे हैं, लेकिन बीज के व्यापारी विकसित हो रहे हैं। और ऐसा तभी होता है जब सदियों

से पीड़ित वर्ग अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता तैयार नहीं कर पाता है और उसे छलपूर्वक पूरी तरह से घेर लिया जाता है।"[116]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की पूरी कहानी ही किसान आत्महत्या के दंश को बयां करता है। शिबू और शकुन का पूरा परिवार कर्ज की राशि चुकाने के लिए त्योहार के दिन भी अच्छा खाना नहीं खाते हैं। शकुन ने तो बैंक का कर्ज चुकाने के लिए अपने गले में पड़ी हंसुली तक को बेंच दिया फिर भी कर्जरूपी फांस ने शिबू को निगल ही लिया। इसी प्रकार यदि हम आशा नाम की किसान की बात करें तो वह एक हिम्मती महिला किसान है जो स्वयं के मेहनत के बल पर अपने परिवार का पालन-पोषण कर रही है। उसके खेत भी ऐसे जगह पर हैं जहाँ पर नहर का पानी ही भरा रहता है। आशा चाहकर भी कुछ नहीं पाती है। उसकी फसल हर साल पानी से सड़ ही जाती है। एक साल, दो साल धीरे-धीरे वह कर्ज के बोझ से दबती जा रही है और स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि घर में रखे कीटनाशक सल्फास को खाकर उसने अपनी जिंदगी समाप्त कर ली- "अरे बाप ! पानी बरसने लगा। एक साथ इतने जोर से मुलगियों को नहीं जगाया। खुद ही उठा-उठाकर रखने लगी अंदर। न सामान बचा पायी न खुद को। फिसलकर गिर पड़ी। चुब्ब-चुब्ब पानी पीता रहा कापूस। चुब्ब-चुब्ब पानी में डूबता रहा मन। अवसाद और हताशा की एक फीकी-फीकी सी तासीर गाढ़ी होती गयी यह सब मेरे कारण हुआ। ताराबाई की तरह लड़ी पर जीत न पायी। अधपेट या भूखी रहकर खून-पसीने से एक-एक इंच कर जोड़े खेत ! सोचा था, भगवान एक बार भी सुन लेगा तो ठीक-ठाक घरों में पार-घाट लग जाएगी मुलगियाँ। लेकिन यह शेती मेरे जी का जंजाल हो गयी और यह जिंदगी भी। धत तेरी जिंदगी की ! बोरे से ढककर रखा था कीटनाशक सल्फास-फसल के कीड़े मारने के लिए आया था जरूरत ही न पड़ी। आज जरूरत है, इसी की जरूरत।"[117] किसान हो या खेतिहर मजदूर हमारे समाज में इनकी आत्महत्या का कारण कर्ज और सरकारी नीतियाँ ही होती हैं। किसान अपनी जमीन बचाने के लिए कर्ज लेता है और मजदूर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज लेता है। जब कर्ज चुकाने में ये असमर्थ हो जाते हैं तो आत्महत्या का मार्ग चुन लेते हैं।

5.7 किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध

किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध की बात करें तो ये भिन्न-भिन्न रूप में हमारे सामने आते हैं। कुछ मामलों में एक दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं और कुछ मामलों में खुद को एक दूसरे से अलग रखने की कोशिश करते हैं। किसान के पास भूमि होती है इसलिए कहीं न कहीं वह अपने आपको खेतिहर मजदूर से अलग रखना चाहता है, जबकि देखा जाए तो खेतिहर मजदूर भी एक तरह से किसान ही हैं। कुछ खेतिहर मजदूर के पास अपनी थोड़ी बहुत जमीन भी होती है इसलिए हम इन दोनों को पूरी तरह से अलग नहीं कर सकते हैं। इस बारे में स्वामी सहजानंद सरस्वती का कथन उल्लेखनीय है-"खेतिहर मजदूर भी तो आखिर बिना जमीन वाले किसान ही हैं। आज जमीन है तो किसान कहाते हैं। कल नीलाम हुई तो मजदूर हो गए। किसी की जमीन आज छिनी, किसी की कल और किसी की बहुत पहले। अर्थसंकट ने तो इधर बहुतों को भूमिहीन कर दिया है। यह जमीन छिन जाने का क्रम बराबर जारी है और दिनोंदिन तेजी पर है। इसलिए भूमि वाले और भूमिहीन ये दो विभाग हमारे किसानों के ठीक ही है और उन दोनों के मध्य कोई पक्की विभाजक रेखा खींची जा सकती नहीं।"[118] जमींदार या बड़े किसान के अपने खेतिहर मजदूरों के साथ अत्याचार का संबंध होता है। वे खेतिहर मजदूरों की वेबशी का फायदा उठाकर उनसे बेगार करवाते हैं, और खेतिहर मजदूर के पास इतना साहस भी नहीं होता है कि वे उनकी बात तो टाल सकें। यही हाल सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास के साहिबु का है। भीमा बा उससे जब मन करता बेगार करवाते और साहिबु की मजबूरी है कि वो उन्हें मना नहीं कर सकता है क्योंकि उसे जब भी कर्ज आदि की जरूरत पड़ती तो भीमा बा का सहारा ही लेना पड़ता है। इसलिए जब भीमा बा को वह पानी रखने के लिए मना कर देता है तो भीमा बा उससे कहते हैं- "तो या ही सही.....आज का बाद तू भी मदद के वास्ते म्हारा दरवज्जे मत आजे।' रात-बेरात हारी-बीमारी में पैसे-कौड़ी की जरूरत पड़ने पर भीमा बा का ही सहारा था। यही सहारा टूट गया तो.....साहिबु परानी हाथ में लेकर चुपचाप बैलगाड़ी पर चढ़ गया।"[119] इसी तरह से यदि हम भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास की बात करें तो वहां भी हमें किसान

और खेतिहर मजदूर के बीच शोषण का ही संबंध दिखाई देता है। ठाकुर चन्दन सिंह तो खेतिहर मजदूरों पर अत्याचार करने के साथ-साथ उनके घर की स्त्रियों का भी शोषण करते हैं। चन्दन सिंह से बेगार करवाने के साथ-साथ उसकी पत्नी अनारो का शारीरिक शोषण भी करता है और जब अनारो उसका विरोध करती है तो वह कहता है- "मैं साले महकू को ही ठिकाने लगवा देता हूँ।.....अनारो काँप उठी-उसके सामने भुल्लन का चेहरा कौंध गया। बेगार से मना करने पर चन्दन ने उसे मरवा दिया था। यह महकू को भी मरवा देगा। जरूर मरवा देगा ! महकू नहीं रहेगा तो फिर मेरा क्या होगा ! अनारो मजबूर हो गयी।"[120] इसके विपरीत यदि हम मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास की बात करें तो वहां पर हमें किसान और खेतिहर मजदूर के बीच पारिवारिक संबंध दिखाई देता है। बलेसर के घर कूदन नाम का खेतिहर मजदूर काम करता है और बलेसर कभी भी उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करते हैं। उनकी खेतिहर मजदूरों के प्रति क्या दृष्टि है इसका अंदाजा उपन्यास की इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है- "किसान, खेत-मजदूरों से अच्छा खाते और रहते हों यह भी नहीं था। उन दोनों के बीच अंतर सिर्फ इस बात को लेकर था कि किसान अपने को खेत मालिक समझते और मजदूर अपने को किसानों के कामगार और आश्रयदाता.....। हालांकि दोनों का कार्य एक-दूसरे के बिना चलनेवाला नहीं था। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर थे। ऐसे में बलेसर अपने बनिहार-चरवाह और अन्य खेत-मजदूरों को कभी हेय दृष्टि से नहीं देखते। अपने कृषिकार्य का उन्हें सहयोगी मानते।"[121] किसान और खेतिहर मजदूर का यही मित्रवत संबंध हमें एम.एम. चंद्रा के 'यह गाँव विकाऊ है' उपन्यास में भी दिखाई देता है। फतह बल्ली के खेतों में काम करता है और बल्ली उसके साथ बहुत ही मैत्रीपूर्ण संबंध रखता है। बल्ली जब भी कहीं बाहर जाता तो वह फतह पर ही अपने खेतों की पूरी जिम्मेदारी देकर जाता है। इसका उदाहरण हमें उपन्यास की ये पंक्तियाँ देती हैं- "मैं तो कई दिनों के लिए शहर जा रहा हूँ। एक नया ऑर्गेनिक बीज आया है, उसके बारे में जानकारी लेने और नयी खेती सीखने जाना है। ऐसा करो, ये लो ट्यूबवैल की चाबी, बरामदे से फावड़ा ले लो। तुम कल सुबह खेतों में पानी चला देना, आजकल दिन की बारी में लाइट आती है। हमारे गाँव

की लाइट ठीक आ रही है। यदि लाइट चली जाये तो घर मत आना, कुछ देर वहीं इन्तजार करना, क्योंकि खेत में एक साथ पानी देना है, वरना फसल खराब हो जाएगी।"[122]

इसी प्रकार खेतिहर मजदूर भी अपने सामर्थ्य के अनुसार किसानों की मदद करने की कोशिश करते हैं। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का टेकू एक खेतिहर मजदूर है। वह गाँव के सब किसानों के खेतों में आवश्यकतानुसार काम करता है। प्राकृतिक आपदा से जब किसानों की फसलें खराब हो जाती हैं तो वह किसानों से अपने द्वारा किये गये काम की मजदूरी ही नहीं मांगता है। टेकू की किसानों के प्रति सहानुभूति का अंदाजा हमें उपन्यास की इन पंक्तियों में लगता है- "टेकू ने दिहाड़ी पर काम करना माना था, पर उसकी पूरी मजूरी उधार खाते में खड़ी रही। सिर्फ करमसिंह से उसके पैसे चुकाए थे। बाकी के लोगों ने फसल के आने के बाद उसका कर्ज निबटाने का जो वायदा किया था, वह सिर्फ वायदा ही बना रहा। पर टेकू को भी मालूम था की हालात क्या हैं, सो उसने कोई तकाजा करना ठीक न समझा। आखिर सब अपने ही सज्जन मितर-माहणू थे। वह भी उस सांझी मुसीबत से अलग थोड़े ही था।"[123] यदि हम किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध की बात करें तो देखते हैं की ये एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। हाँ कुछ परिस्थितियां इन्हें एक दूसरे से भिन्न करती हैं तो कुछ परिस्थितियां इन्हें एक दूसरे से जोड़े रखने का काम करती हैं।

इस प्रकार हम किसान एवं खेतिहर मजदूरों की तुलना करके देखते हैं तो हमें पता चलता है कि किसान और खेतिहर मजदूर की समस्याएं कुछ मायनों में तो एक ही हैं, कुछ मायनों में खेतिहर मजदूर की समस्याएं किसानों से अलग हैं। किसान भूमि का मालिक होता है इसलिए उसकी समस्याएं उसकी भूमि से जुड़ी होती हैं। वह अपने जीवनपर्यंत अपनी भूमि को बचाने के लिए एवं अच्छी कृषि के लिए संघर्षरत रहता है। उसकी हमेशा यही कोशिश रहती है कि किसी भी तरह से उसे अपनी भूमि का स्वामित्व न खोना पड़े। इसके लिए वह हर कीमत चुकाने को तैयार रहता है। दूसरी तरफ खेतिहर मजदूर जिसके पास भूमि का बहुत ही कम रकबा होता है। न तो उसके सामने भूमि बचाने की समस्या होती है, न ही अच्छी फसल

उपजाने की, उसकी तो मूल समस्या मजदूरी की होती है। वह बस यही चाहता है कि उसे वर्ष भर काम मिलता रहे जिससे उसकी जीविका सुचारू रूप से चलती रहे। उसके सामने भूमि के मोह जैसी कोई समस्या नहीं होती है इसलिए वह गाँव में मजदूरी न मिलने पर कहीं भी पलायन करने को तैयार रहता है, लेकिन किसानों के सामने यह स्वच्छन्दता नहीं होती है, उसे न चाहते हुए भी अपनी जमीन से जुड़े रहना पड़ता है। खेतिहर मजदूर का जीवन कुछ मामलों में किसानों से कहीं अधिक कष्टप्रद होता है, क्योंकि किसानों के पास उसकी भूमि का सहारा होता है किंतु खेतिहर मजदूर के पास कोई संपत्ति नहीं होती है उनका श्रम ही उनकी संपत्ति होती है। यहाँ तक कि समस्याओं से जूझते हुए खेतिहर मजदूर आत्महत्या कर लेता है तो उसकी आत्महत्या तक के आंकड़े सरकार के पास नहीं होते हैं।

संदर्भ

1. शर्मा, रामविलास; भारतेंदु हरिश्चंद और हिंदी नवजागरण की समस्याएं; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2019; पृ. 74
2. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2010; पृ. 15
3. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 120
4. वही; पृ. 126
5. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 72
6. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 207
7. वही; पृ. 85
8. तिवारी, अजय; यह मशाल बुझ न जाए; नया ज्ञानोदय (सं.) लीलाधर मंडलोई; 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003; मई,2017; पृ. 37
9. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 130
10. वही; पृ. 130
11. चमड़िया, अनिल; किसान, मजदूर और समाचार पत्र; जनमीडिया (सं.) अनिल चमड़िया; सी-2, पीपलवाला मोहल्ला, बादली एक्सटेंशन, दिल्ली- 42; फरवरी,2018; पृ. 7
12. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 75
13. सिंह, पुष्पपाल; इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 115
14. वही; पृ. 24
15. वही; पृ. 24
16. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 54
17. वही; पृ. 203
18. कुमार, प्रवीण; निखर्ची कुदरती खेती : एक और जालिम जुमला; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट– बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; अक्टूबर, 2019; पृ. 8
19. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 250
20. वही; पृ. 248
21. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 183

22. वही; पृ. 41
23. सिंह, वैभव; हिंदी कथाओं से झांकती उदास आँखे; नया ज्ञानोदय (सं.) लीलाधर मंडलोई, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; मई,2017; पृ. 40
24. सेन, सुकोमल; भारत का मजदूर वर्ग उद्भव और विकास (1830-2010) (अनु.) अवधेश कुमार सिंह; ग्रंथ शिल्पी; संस्करण : 2012; पृ. 453
25. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 132
26. वही; पृ. 136
27. वही; पृ. 136
28. वही; पृ. 139
29. वही; पृ. 152
30. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; जुलाई,2017; पृ. 37
31. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 202
32. वही; पृ. 203
33. वही; पृ. 204
34. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 52
35. वही; पृ. 125
36. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 182
37. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 139
38. बराड़, (डॉ.) सुरजीत; पूंजीवाद वैश्वीकरण कृषि के लिए ख़तरनाक और घातक; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम -मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर, 2019; पृ. 52
39. हरनोट, एस. आर.; हिडिम्ब; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर-16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2011; पृ. 22
40. वही; पृ. 34
41. रोकड़े, संजय; नीति चाहिए, राजनीति नहीं; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; जुलाई,2017, पृ. 23
42. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ- 4. शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 30
43. आशुतोष; दिल्ली में किसानों-मजदूरों की विशाल रैली; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; नवम्बर,2018; पृ. 28
44. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-

201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 124

45. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 43
46. वही; पृ. 46
47. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 123
48. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 123
49. पकीवाँ, रघबीर सिंह; कृषि संकट और किसान संघर्ष; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर,2016; पृ. 33
50. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए , दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 68
51. वही; पृ. 69
52. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 6
53. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 111
54. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 25
55. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद -201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 121
56. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 118
57. मौर्य, अनुराग; सरकारी और कारोबारी लूट से तबाह होता किसान; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; नवम्बर,2018; पृ. 15
58. चन्द्रा, एम. एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 140
59. (विचार) जन संघर्ष की अनिवार्यता; जन संघर्ष समन्वय समिति; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110095; जुलाई,2017; पृ. 17
60. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 200 ; पृ. 67
61. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 81
62. वही; पृ. 111
63. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर- 16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 209
64. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया, Q-63, सेक्टर- 12, नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 68

65. वही; पृ. 72
66. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल; (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट काजीपुर, पटना नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पथ, पटना- 800001; जनवरी-फरवरी, 2018; पृ. 18
67. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018; पृ. 13
68. पुनेठा, प्रेम; एक आत्महत्या के बहाने; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110095; जुलाई,2017; पृ. 20
69. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018; पृ. 31
70. वही; पृ. 32
71. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 43
72. वही; पृ. 57
73. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 117
74. वही; पृ. 82
75. मोहन, अरविंद; बिहारी मजदूरों की पीड़ा; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2017; पृ. 149
76. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेशप्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी- 7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 65
77. तग्गद, लह्म्बर सिंह; भारतीय किसान आन्दोलन के सामने चुनौतियां और मुद्दे; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम- मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर, 2018; पृ. 23
78. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018; पृ. 45
79. वही; पृ. 46
80. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एम.सी.एफ.-267, सेक्टर- 16, पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 220
81. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 164
82. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 87
83. तग्गद, लह्म्बर सिंह; भारतीय किसान आन्दोलन के सामने चुनौतियां और मुद्दे; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम- मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर,2018; पृ. 27
84. उपाध्याय, रमेश; किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास; कथन (सं.) संज्ञा उपाध्याय; 107, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली- 110063; जनवरी-मार्च,2019; पृ. 151
85. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016 ; पृ. 107

86. शर्मा, देविंदर; अब खेतों में किसान नहीं दिखेंगे; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 194
87. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 38
88. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण: 2017; पृ. 78
89. वही; पृ. 110
90. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त,2017; पृ. 8
91. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 48
92. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017; पृ. 8
93. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 48
94. वही; पृ. 56
95. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 139
96. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 46
97. वही; पृ. 61
98. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 62
99. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2016; पृ. 38
100. प्रेमचंद; गोदान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2016; पृ. 318
101. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 46
102. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण: 2017; पृ. 78
103.वही; पृ. 149
104. वही; पृ. 208
105. श्रोत्रिय, प्रभाकर; आत्महत्या की फसल; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017, पृ. 11
106. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2007; पृ. 190
107. वही; पृ. 191
108. पाढ़ी, रंजना; ख़ुदकुशी के साये में जिन्दगी की बातें; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद

गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; फरवरी,2016; पृ. 23

109. रोकड़े, संजय; नीति चाहिए, राजनीति नहीं; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त,2017, पृ. 24

110. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 63

111. वही; पृ. 63

112. गौरीनाथ, हम किस दिन के इन्तजार में हैं ?; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017; पृ. 28

113. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 49

114. वही; पृ. 56

115. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 140

116. चमड़िया, अनिल; नई अर्थव्यवस्था में किसानों की आत्महत्या; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 113

117. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2016; पृ. 144

118. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेशप्रधान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण: 2017; पृ. 154

119. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 9

120. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2011; पृ. 171

121. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2018; पृ. 85

122. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 28

123. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.-267, सेक्टर-16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 169